VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६५, ८

नवम्बर –2016

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक :
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ० रामनिवास 'मानव'	नहीं प्रेम का मोल	कविता	२
श्री सीताराम गुप्ता	जीवन में कर्म को सर्वोपरि स्थान देकर संभव है गीता से जुड़ना	लेख	३
डॉ. सत्यव्रत वर्मा	रत्नगर्भा √कृ (धातु)	लेख	६
डॉ० सत्यपाल शर्मा	विश्वज्योति पत्रिका सम्बन्धी विद्वद्-विचार	लेख	१२
डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी	धर्मानुशासित जीवन जिएं	लेख	१४
डॉ. अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'	ताम्रपर्णी	लेख	१८
डॉ. आशा मेहता	कबीर का सामाजिक चिन्तन	लेख	२३
डॉ. अर्चना रानी वालिया	अच्छी पुस्तकें हमारी मार्गदर्शक	लेख	२६
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	दीप जलाओ	कविता	३०
श्री करण कुमार	जानकीहरण महाकाव्य में प्राकृतिक बिम्ब-विधान	लेख	३१
श्री अजय शर्मा	रामलुभाया कृत पंजाबी रामायण का वैशिष्ट्य	लेख	३४
श्री सुरिन्द्र कुमार	कबीर की सत्यान्वेषी वाणी	लेख	३७
सुश्री निधि चौधरी	भक्ति एवं उपासना शब्द की एकार्थकता	लेख	४०
	संस्थान-समाचार		४३
	विविध-समाचार		४८
	पुण्य-पृष्ठ		४९-५२

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६५ होश्यारपुर, कार्तिक २०७३; नवम्बर २०१६ संख्या ८

सं संस्रवन्तु सिन्धवः
सं वाताः सं पतत्रिणः।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां
सं स्राव्येण हविषा जुहोमि।।
(अथर्व. १.१५.१)

(सिन्धवः) नदियां सम्पुष्ट होती हुई (संस्रवन्तु)खूब बहें, (वाताः) वायुगण संपुष्ट होते हुए (खूब चलें), (पतत्रिणः)पक्षी संपुष्ट होते हुए खूब (उडें), मैं (पूर्व दी जा चुकी आहुतियों के शेष रूप में) (संस्राव्येण)समुदित धारावाहिनी संस्रावनामक (हविषा)हवि द्वारा (जुहोमि)यजन करता हूँ। (मे) मेरे (इमं) इस (यज्ञं) यज्ञ को (प्रदिवो) सुप्रकाशयुक्त देवता (गण) (जुषन्ताम्) स्वीकार करें।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

नहीं प्रेम का मोल

– डॉ० रामनिवास 'मानव'

जब-जब पश्चाताप से, जीवन हुआ हराम।
मरा-मरा के मन्त्र से, तब-तब उपजे राम।।

कृतकृत्य हम हुए सदा, लेकर जिसका नाम।
रोम-रोम में वह रमा, समझ उसी को राम।।

राम करें वनवास तो, कृष्ण रचायें रास।
अपना-अपना भाग्य है, भैया रामनिवास।।

कौन बजाये बांसुरी, कौन सुनाये तान।
गोकुल में कान्हा नहीं, मथुरा में रसखान।।

हमने देखे घूमकर, सब भूगोल-खगोल।
नहीं रूप का तोल है, नहीं प्रेम का मोल।।

गोबर अब शहरी हुआ, भूला सब घर-गांव।
होरी-धनिया को मगर, कहां दूसरा ठांव।।

जिसके मन में वेदना, जिसका उर निःस्वार्थ।
वही देवाधिदेव है, और वही सिद्धार्थ।।

तुलसी का बिरवा नहीं, नहीं नीम की छांव।
ऐसे अगड़े शहर से, अच्छा पिछड़ा गांव।।

नव-प्रगति का प्रमाण है, और यही पहचान।
करे कुंवारी अस्मिता, फिर-फिर गर्भाधान।।

– 'अनुकृति', ७०६, सैक्टर-१३, हिसार-१२५००५ (हरि०) फोन: ०१६६२-२३८७२०

जीवन में कर्म को सर्वोपरि स्थान देकर संभव है गीता से जुड़ना

– श्री सीताराम गुप्ता

कुछ दिन पूर्व की बात है (दिनांक १८-०८-२०१३) स्वामी श्यामानंद सरस्वती के नए रुबाई-संग्रह 'चलो कहीं चलें' का विमोचन हुआ। मुझे भी यह कृति पाने और पढ़ने का सुअवसर मिला। संग्रह 'चलो कहीं चलें' की रुबाइयाँ पढ़ते हुए जिस पहली रुबाई ने मुझे रोक कर बार-बार पढ़ने के लिए विवश किया वो रुबाई निम्नलिखित है-

अच्छा है कि सत्कर्म के हम नभ पे उड़ें
जो मोक्ष को पथ जाता है उस ओर मुड़ें
गीता को सुनें और पढ़ें अच्छा है
उससे भी कहीं अच्छा है गीता से जुड़ें

स्वामीजी गीता से जुड़ने की बात कहते हैं क्योंकि वो गीता से जुड़ने को अपेक्षाकृत अच्छा मानते हैं। गीता से जुड़ने का क्या अर्थ है? क्या हम गीता से जुड़े हुए नहीं हैं?

हम इस धार्मिक, आध्यात्मिक व जीवनोपयोगी मनोवैज्ञानिक ग्रंथ को हर दृष्टि से जितना महत्त्व देते हैं और किसी पुस्तक को नहीं देते। हम सब गीता को एक पवित्र ग्रंथ मानते हैं, इसकी पूजा करते हैं। जहां देखो वहां गीता का पाठ हो रहा है। न्यायालयों में हम गीता पर हाथ रखकर ही सच और केवल सच बोलने की कसम खाते हैं, गीता के महत्त्व का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा? लेकिन इस सब के बावजूद भी क्या हम गीता से जुड़े हुए हैं? वास्तव में गीता से जुड़ने का क्या अर्थ है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए सबसे पहले ये जानना होगा कि गीता का मुख्य संदेश क्या है? गीता में कहा गया है कि-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

मनुष्य फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करे यही संदेश तो देती है गीता। मनुष्य कर्म करे फल की इच्छा नहीं। मनुष्य के लिए सबसे अनिवार्य है कर्म। विभिन्न पुस्तकों के माध्यम से मनीषियों द्वारा इस संसार-सागर को पार करने अथवा मोक्ष-प्राप्ति के तीन मार्ग बतलाए गए हैं- भक्ति, ज्ञान और कर्म। जो व्यक्ति नियमित रूप से कर्म करता हुआ व्यस्त रहता है उसे बाकी चीज़ों के लिए समय ही कहां मिल पाता है। वैसे भी कर्म-मार्ग के

साधक को किसी भी प्रकार के बाह्याडंबर की आवश्यकता ही नहीं होती।

गीता में ही कहा गया है 'योगः कर्मसु कौशलम्'। कार्यों में कुशलता ही योग है अर्थात् कुशलतापूर्वक कार्य करने वाला किसी योगी से कम नहीं। हाँ कर्म सम्यक् हो, सात्त्विक हो। सम्यक् अथवा सात्त्विक कर्म कभी छोटा या बड़ा नहीं होता। लोग विभिन्न प्रकार की साधनाओं में लगे रहते हैं। कोई घंटों आँख मूंद कर बैठा है तो किसी ने घंटी बजा-बजाकर, भजन गा-गाकर आसमान सिर पर उठा रखा है। कहीं लाउड-स्पीकर का इतना शोर है कि रेलगाड़ी के आने की आहट भी नहीं सुनाई देती और दर्जनों भक्त उत्साहातिरेक में ग़लत तरीके से रेल की पटरियाँ पार करते हुए रेलगाड़ी के पहियों से कटकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। क्या यही भक्ति है? क्या यही साधना है? यही योग है?

कुछ लोग अच्छे साधक भी होते हैं इसमें संदेह नहीं। वे लोग किसी को परेशान भी नहीं करते लेकिन उनकी साधना से किसका भला हो रहा है ? कह सकते हैं कि उनका भला तो हो ही रहा है लेकिन नहीं भी। अधिकांश लोगों ने सांसारिक समस्याओं से डरकर यह मार्ग अपनाया है। कुछ लोग आत्म-प्रदर्शन अथवा अपने अहंकार की तुष्टि के लिए ये मार्ग अपनाए हुए हैं। कुछ लोग साधना में थोड़ी सफलता प्राप्त कर लेने के बाद अहंकारी हो जाते हैं। भक्ति और ज्ञान की तरह कर्म के मार्ग में ये खतरे नहीं हैं। निरहंकार रहकर अपने कर्म, सेवा अथवा मज़दूरी द्वारा दूसरों की मदद करने वाला किसी भी प्रकार से एक योगी से कम नहीं।

एक किसान अथवा मज़दूर सबसे बड़ा योगी है, जिसको न गर्मी न सर्दी की और न बरसात की परवाह होती है, अपितु जीवनभर पूरे संसार के लोगों का पेट भरने की खातिर वह मौन-साधना में रत रहता हुआ अपना कार्य करता रहता है। एक किसान को कभी यह अहंकार नहीं होता कि उसके बिना संसार का पेट नहीं भरेगा। न किसी मज़दूर को ये अहंकार होता है कि उसके कारण देश की औद्योगिक और व्यावसायिक उन्नति हो रही है। एक सुंदर भवन का निर्माण करवाने वाला गर्वपूर्वक कहता है कि उसने ये सुंदर इमारत तामीर करवाई है जबकि उसके मूल में मज़दूर और किसान का श्रम है। पैसों से अच्छी वस्तुएँ प्राप्त कर लेना व्यावहारिक व व्यावसायिक कुशलता है। व्यावहारिक व व्यावसायिक कुशलता योग नहीं कार्य में कुशलता योग है।

अब बात आती है पठन-पाठन और स्वाध्याय की। पठन-पाठन और स्वाध्याय के

महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। गीता निःसंदेह एक महान् ग्रन्थ है। गीता का अध्ययन कर सकें, उसे समझ सकें तो इससे बड़ी उपलब्धि हो ही नहीं सकती। लेकिन क्या पढ़ना और समझना ही पर्याप्त है? आज देश में ही नहीं विदेशों में भी ऐसे असंख्य लोग मिल जाएँगे जिन्हें गीता कंठस्थ है। हर श्लोक की विशद व्याख्या वे कर सकते हैं। गीता पर घंटों प्रवचन कर सकते हैं। अनेकानेक व्यक्तियों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से गीता के महत्त्व को सिद्ध किया है।

बड़े-बड़े आचार्य और वेद-विशारद ही नहीं अनेक सामान्य-जन भी गीता पर अधिकारपूर्वक बात करते हैं, गीता के मर्म को समझते हैं। हर क्षेत्र में गीता-मर्मज्ञ मिल जाएँगे। कुछ लोग हैं जो गीता के प्रचार-प्रसार के लिए रात-दिन एक किए रहते हैं। जहां देखो वहीं गीता-ज्ञान-यज्ञ अर्थात् गीता-पाठ व व्याख्या चल रही है। लाखों लोग गीता के प्रचार-प्रसार में लगे हैं। इसके संदेश को भी समझ रहे हैं। करोड़ों लोग इन आयोजनों में सम्मिलित होकर धर्मलाभ कर रहे हैं। लेकिन क्या केवल गीता सुनने, उसका संदेश रटने और फिर अपनी आध्यात्मिकता की धाक जमाने के लिए प्रवचन करने मात्र से धर्म लाभ हो सकता है? शायद नहीं।

हमारे सामने नदी बह रही है। जब तक हम उसमें उतरेंगे नहीं, गोता नहीं लगाएँगे तब तक स्नान नहीं होगा। वह भी मात्र भौतिक स्नान ही होगा। वास्तविक स्नान तो काया का नहीं मन का होता है। मन के स्वच्छ, निर्मल, उज्ज्वल और पावन होने पर ही वास्तविक स्नान है अन्यथा नहीं। वास्तविक स्नान की बात छोड़िए हम नदी के तेज़ प्रवाहित शीतल जल में तो दूर घर पर भी सुविधापूर्ण, सुसज्जित स्नानागार तक में उष्ण जल से स्नान करने से बचते फिरते हैं।

ज़रूरत है तन और मन दोनों के स्नान की। गीता जीवनग्रंथ है। यह जीवन जीने की कला सिखाता है। गीता दोनों प्रकार के स्नान करवाने में सक्षम है। गीता के संबंध में दृष्टि बदलने की ज़रूरत है। गीता का पठन-पाठन और स्वाध्याय ज़रूरी है ताकि इसका संदेश स्पष्ट हो सके लेकिन वास्तविक स्नान की तरह गीता का महत्त्व भी गीता से यथार्थ रूप में जुड़ने अर्थात् जीवन में कर्म को सर्वोपरि मानने और कर्म में संलग्न होने में है और वो भी पूर्णतः निष्काम भाव से।

– ए डी-१०६-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४
फ़ोनः ०९५५५६२२३२३

रत्नगर्भा √कृ (धातु)

–डॉ. सत्यव्रत वर्मा

लगभग चालीस वर्ष पूर्व कृ धातु के अर्थ-बाहुल्य से आकृष्ट होकर इसके विविध अर्थों के अन्वेषण की जो यात्रा आरम्भ हुई थी, वह अविराम जारी है। इस अवधि में /कृ के जो चमत्कारी अर्थ साहित्य के अनुशीलन से प्राप्त हुए उनका भारती विद्या की विख्यात शोध-पत्रिकाओं में विस्तृत विमर्श किया जा चुका है। किन्तु कृ धातु कल्पलता अथवा कामधेनु से कम नहीं है। अध्ययन-अनुसन्धान से इसके नये-नये अर्थ प्रकट होते हैं। वस्तुत: कृ के अर्थों की इयत्ता नहीं है। कहने को तो यह तनादिगण की धातु है, किन्तु अर्थ-वैभव की दृष्टि से यह स्वयं किसी 'महागण' से कम नहीं है। संस्कृत की अनेक धातुएं नाना अर्थों की वाचक हैं, पर संस्कृत की यदि कोई धातु सचमुच बहुवर्थक है, वह कृ है। कृ की बहुवर्थकता का रहस्य इसके उस सामान्य अर्थ में निहित है, जिसे धातु पाठ में 'करण' कहा गया है- डुकृञ् करणे। इस सामान्य 'करण' (करना) अर्थ की अनन्त विशेष भंगिमाएं हैं, जो सन्दर्भ तथा प्रसंग के अनुकूल स्वत: खुलती जाती हैं। सामान्य की परिणति अन्ततोगत्वा विशेष में होती है- न निर्विशेषं सामान्यम्। शायद ही कोई ऐसा कल्पनीय/अकल्पनीय अर्थ हो, जो कृ धातु से बोधित न हुआ है। सांख्य के सत्कार्यवाद की भावना के अनुरूप कार्य-सदृश ये विशिष्ट अर्थ कृ के कारण-तुल्य सामान्य अर्थ के उदर में समाए हैं, जो जलधारा से सिंचित उर्वर धरा से अंकुरों के समान सहसा प्रकट हो जाते हैं।

वैसे तो कृ के सभी प्रकार के रूपों में उसके मनोहारी अर्थों की छटा दृष्टिगोचर होती है, परन्तु इसके कृदन्त रूप तो चमत्कारी अर्थों का अनूठा भण्डार हैं। अमरकोष में 'सुकरा' शब्द 'सुशील गाय' के अर्थ में पढ़ा गया है- स्यादचण्डी तु सुकरा। टीकाकार भानुजिदीक्षित ने प्रत्यय की दृष्टि से 'सुकरा' की व्याख्या करने की चेष्टा की है- सु सुखं करोति। अच् (३.१.१३४)। सु क्रियते वा। 'ईषद् दु:सुषु....' (३.३.१२६)। किन्तु

'सुशील गाय' को 'सुकरा' क्यों कहा गया है, यह इससे स्पष्ट नहीं होता। इसका रहस्य कृ के उस अर्थ में छिपा है, जिसमें यहां उसका प्रयोग किया गया है। 'सुकरा' में कृ धातु एक सर्वथा अज्ञात- दुहना- अर्थ में प्रयुक्त हुई है-

सुखेन क्रियते दुह्यते इति सुकरा।

जो गाय उग्र स्वभाव की न हो जिससे उसे आसानी से दुहा जा सके, उसे 'सुकरा' कहते हैं। सुशील गाय का यही लक्षण है। गाय की सुशीलता को कुछ विस्तृत आयाम देने के लिये कृ को यहां सेव् का वाचक भी माना जा सकता है-

सुखेन क्रियते सेव्यते इति सुकरा।

जो गाय इतनी सुशील हो कि कोई भी सहज भाव से उसकी सेवा-सपर्या कर सके, कोषकारों ने उसे बहुत मार्मिक 'सुकरा' नाम दिया है।

अमरकोष आदि कोषों के अनुसार 'कारा' शब्द 'बन्धनालय' का पर्याय है- **कारा स्याद् बन्धनालये।** भानुजिदीक्षित ने इसे 'कृ विक्षेपे' से व्युत्पन्न माना है- 'कृ विक्षेपे' (तु.प.से.)। भिदादिपाठात् (३.३.१०४) अङ्दीर्घौ। कीर्यतेऽत्र। 'कारा' की कृ धातु से व्युत्पत्ति मानना भानुजि की गजनिमीलिका ही है। उनकी व्याख्या 'कीर्यतेऽत्र' का तात्पर्य भी स्पष्ट नहीं है। वास्तविकता यह है कि 'कारा' की व्युत्पत्ति कृ विक्षेपे से नहीं 'डुकृञ् करणे' से हुई है और कृ धातु का अर्थ यहां 'कैद करना' है-**क्रियन्ते बध्यन्तेऽपराद्धा अत्र**-जहां अपराधियों को कैद किया जाता है, वह कारा है।

नाद्यापि कर्मगृहीतो लोप्त्रगृहीतो वाऽभूत्

(वाक्यमुक्तावली, पृ. १६८)

' यह नौकर आज तक चोरी करता हुआ अथवा चोरी के माल के साथ नहीं पकड़ा गया।' कर्मगृहीतः कर्मणि गृहीतः। यहां कर्म का अर्थ 'चोरी' है अर्थात् कृ धातु यहां 'चोरी करना' अर्थ में प्रयुक्त हुई है। शूद्रक के मृच्छकटिक में भी 'कर्म' का इसी अर्थ में प्रयोग किया गया है-

कृत्वा शरीरपरिणाहसुखप्रवेशं,
शिक्षाबलेन च बलेन च कर्ममार्गम्। (३.९)

कर्ममार्गम् चौर्यमार्गम्। चोरी करने का रास्ता, सेंध।

'क्रिया' का 'शिक्षा' अर्थ प्रसिद्ध है। अमरकोष में क्रिया के दिये गये नौ अर्थों में 'शिक्षा' भी सम्मिलित है-

आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं संप्रधारणम्।

रघुवंश की प्रसिद्ध पंक्ति 'क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति' में क्रिया शब्द का यही अर्थ है। 'सुपात्र को दी गयी शिक्षा सफल होती है।'

कौटल्य में भी क्रिया का यह अर्थ सुरक्षित है-

क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्।

इससे स्पष्ट है कि कृ धातु का यहां 'शिक्षा देना' अर्थ है।

शमं हि सर्वे... कारिता अकारिताश्च कामयन्ते-

(वाक्यमुक्तावली, पृ. १८०) में कृ इसी अर्थ को कहती है। कारिताः-शिक्षिताः, अकारिताः- अशिक्षिताः। शिक्षित (पढ़े-लिखे) लोग हों या अशिक्षित (अनपढ़), सब शान्ति चाहते हैं।

अन्येद्युष्कं ज्वरं कुर्यान्न साद्यस्कमिति वैद्याः- (वाक्यमुक्तावली, पृ.२३८) ज्वरं कुर्यात् का क्या तात्पर्य है? ज्वर के साथ एक ही काम किया जा सकता है कि उसकी तत्काल चिकित्सा की जाए। वस्तुतः कृ धातु का अर्थ यहां 'चिकित्सा करना' है। तिङन्त के रूप में कृ का इस अर्थ में भले ही अधिक प्रयोग न हो, किन्तु 'क्रिया' शब्द में यह अर्थ सर्वविदित है। अमरकोष में क्रिया के जो नौ अर्थ दिये हैं, उनमें चिकित्सा भी एक है। अतः 'ज्वरं कुर्यात्' का अर्थ है 'ज्वरं चिकित्सेत्'। 'एक दिन पुराने ज्वर की चिकित्सा करे, न कि उसी दिन के ज्वर की।' **एषोऽहं कालं करोमि येन त्वया कृत्यमिदं निर्वर्तनीयम्** (वा. मुक्तावली, पृ.२२२)। इस वाक्य में 'कालं करोमि' का तात्पर्य विचारणीय है। वाक्य के भाव को देखते हुए यहां 'करोमि' का अर्थ निश्चिनोमि नियमयामि ही हो सकता है। कृ धातु स्पष्टः वाक्य में 'निश्चय करना' अर्थ में प्रयुक्त हुई है। 'मैं समय (समय की अवधि) निश्चित करता हूँ। जिसमें तुम्हें यह कार्य पूरा करना होगा।' कालं कालावधिं करोमि निश्चिनोमि (नियमयामि)

क्रुद्धः किं मां करिष्यसि -

(वा. मुक्तावली, पृ. ११६) में भी कृ का अर्थ कम रोचक नहीं है। यहां कृ का 'हानि पहुंचाना', बिगाड़ना अर्थ में प्रयोग किया गया है। तू क्रोधित होकर मेरा क्या बिगाड़ लेगा? **वित्तं वित्तमिति कृत्वा समुज्सृज** (वा. मुक्तावली, पृ. १४०) में कृ धातु 'मन्' (सोचना, विचारना) की पर्यायवाची है कृत्वा-मत्वा। धन को धन समझ कर खर्च करो। उसका अपव्यय न करो।

पंचतन्त्र तथा हितोपदेश में कृ के कुछ रोचक प्रयोग मिलते हैं। पंचतन्त्र से ही ज्ञात होता है कि कभी कृ धातु 'गाना' अर्थ में भी प्रयुक्त होती थी। **तदहं गीतं करिष्यामि। तत् कथय कतमेन रागेण करोमि** (पृ. ४८४)। **त्वं पुनः स्वेच्छया गीतं कुरु** (पृ. ४८६) इन तीनों वाक्यों में कृ का यही अर्थ है। मैं गीत गाऊंगा। तो बता, किस राग में गाऊं। तुम

अपनी मर्ज़ी से कोई गीत गाओ। सामान्यत: कृ के इस अर्थ की कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। परन्तु साहित्य में कृ की ऐसी आश्चर्यजनक भंगिमाएं देखने को मिलती हैं। पंचतन्त्र से ही ज्ञात होता है कि 'बिताना' अर्थ में भी कृ धातु का प्रयोग होता था- **स्वामिन्! न युक्तमिदं यन्मित्रद्रोहेण जीवनं क्रियते** (पंच० पृ. १२५)। यहां क्रियते का सीधा अर्थ 'नीयते' 'याप्यते' है। स्वामिन्! आप जो मित्र से दुश्मनी करके जीवन बिता रहे हो, वह उचित नहीं है। रथकारो निजां भार्यां सजारां शिरसाऽकरोत् (हितो०. ३.२४) में कृ 'उठाना' अर्थ की वाचक है। अकरोत- उवाह, धारयामास। रथकार ने अपनी पत्नी को उसके जार सहित सिर पर उठा लिया। यद्यपि 'उत्पन्न करना' अर्थ में कृ का अन्यत्र भी काफी प्रयोग हुआ है, किन्तु हितोपदेश का यह प्रयोग अपनी आदर्शवादिता के कारण विशेष उल्लेखनीय है-

सा श्रीर्या न मदं करोति,
स सुखी यस्तृष्णया विमुच्यते। (हितो०, ३.१४१)

मदं करोति- मदं जनयति। सच्चा वैभव वही है, जिसे पाकर मनुष्य में अहंकार पैदा न हो। हितोपदेश में कृ का जो सबसे विलक्षण अर्थ मिलता है, वह 'तोलना' (To Weigh) है। अश्वमेधसहस्राणि सत्यं च तुलया कृतम् (हितो० ४.१३०)। हज़ारों अश्वमेध यज्ञों तथा सत्य को तुला में जब तोला गया, तो सत्य का पलड़ा ही भारी रहा। शायद ही कृ धातु अन्यत्र इस अर्थ में प्रयुक्त हुई हो। यही तो कृ के अर्थ-वैभव की महिमा है।

'सहन करना' एक अन्य चमत्कारी अर्थ है, जिसका प्राचीन कवियों ने कृ धातु से सवन किया है। इस दृष्टि से रामायण (२.६४.२०) का यह प्रयोग उल्लेखनीय है- नाशकत् तीव्रमायासं स कर्तुं भगवानृषि। आयासं विपदं कर्तुं सोढुं नाशकत्। वह पूजनीय ऋषि उस घोर विपदा को सहन नहीं कर सका। कृ के अक्षय कोष का वस्तुत: आर-पार नहीं है।

व्यभिचारंमुनिर्ज्ञात्वा पत्न्या: प्रकुपितोऽब्रवीत्।
घ्नतैनांपुत्रका: पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे।।

भागवत पुराण (९.१६.१) के इस पद्य में प्रयुक्त कृ के लिट् प्रथमपुरुष बहुवचन (आत्मनेपद) के रूप चक्रिरे का महत्त्व तथा अर्थ आपातत: स्पष्ट नहीं है। प्रसंग से प्रतीत होता है कि कृ धातु यहां हन् (घ्नत) के समकक्ष के रूप में प्रयुक्त की गयी है। यदि यह अनुमान ठीक हो, तो चक्रिरे का एक ही अर्थ हो सकता है, और वह है 'जघ्नु:'। वस्तुत: कृ पद्य में हन् की पर्याय है अर्थात् वह 'मारना, हत्या करना' अर्थ में प्रयुक्त हुई है।

पिता के आदेश देने पर भी पुत्रों ने माता की हत्या नहीं की(चक्रिरे-जघ्नुः)।

कृ का 'उत्पन्न करना' अर्थ प्रसिद्ध है। साहित्य में अनेक स्थानों पर इस अर्थ में कृ का प्रयोग मिलता है। दर्शनशास्त्र के अनुशीलन के लाभ का बखान करते हुए कौटल्य की इस उक्ति-प्रज्ञावाक्य-क्रियावैशारद्यं च करोति (अर्थशास्त्र, १.२.१२)- में कृ धातु 'उत्पन्न करना ' अर्थ में ही प्रयुक्त हुई है, यद्यपि 'उत्पादन' की भंगिमा यहां कुछ भिन्न है। दर्शनशास्त्र का अध्ययन व्यक्ति में बुद्धि की तीव्रता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता तथा कर्मशीलता उत्पन्न करता है। आर्यशूर की जातकमाला में कृ के इस अर्थ का रोचक उदाहरण मिलता है। उसके दार्शनिक स्वर के कारण समूचे पद्य को यहां उद्धृत करना सर्वथा समीचीन होगा-

यदि पङ्कजनालरचनादि च यत्तदहेतुकं ननु सदैव भवेत्।
सलिलबीजादि कृतमेव तुतत्, सति तत्र संभवति नह्यसति ।।
(१३-२६)

यदि कमलनाल आदि कारण के बिना उत्पन्न होते, तो उन्हें सदा बने रहना चाहिये था। किन्तु वे तो बीज, जल आदि से पैदा होते हैं, उनके अभाव में वे पैदा नहीं होते।

मम्मट से ज्ञात होता है कि कभी कृ धातु 'प्रयोग करना' अर्थ में भी प्रयुक्त होती थी। काव्यप्रकाश में इसका एक रोचक उदाहरण मिलता है। विशेष स्थिति में संचारीभावों के नामतः प्रयोग का औचित्य बताते हुए मम्मट का कथन है-

उत्सुकत्वानुभावस्य सहसा प्रसरणादिरूपस्य तथा प्रतिपत्तिकारित्वाभावादुत्सुकमिति कृतम्।
(काव्यप्रकाश, सं. आचार्य विश्वेश्वर, पृ. ३६६)

यहां स्थायीभाव 'उत्सुकत्व' का नामतः प्रयोग किया गया है (कृतं प्रयुक्तम्)। क्योंकि उसके तीव्र गति आदि अनुभाव पार्वती के औत्सुक्य को प्रभावी रूप से प्रकट नहीं कर सकते।

हविराज्यं पुरोडाशः कुशाः यूपाश्च खादिराः।
नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे।।

रामायण (२.६१.१०७) के इस पद्य में कृ का जिस अर्थ में प्रयोग किया गया है, वह पूर्ववर्ती अर्थ से नाम को ही भिन्न है। टीकाकार द्वारा की गयी व्याख्या- कुर्वन्ति विनियुञ्जते-से स्पष्ट है कि पद्य में कृ का अर्थ 'विनियोग करना' है; यद्यपि हिन्दी में उसे बहुधा 'प्रयोग' शब्द से ही व्यक्त किया जाता है। पुरानी हवियों, घृत, कुश ग्रास, खदिर के यूप आदि का यज्ञ में विनियोग/प्रयोग वर्जित है।

रामायण के पद्यार्ध- इति पुत्रस्य शेषाश्च कृत्वा शिरसि भामिनी (२.२५.३७)

में प्रयुक्त 'कृत्वा' का अर्थ अस्पष्ट है। टीकाकार ने जो इसकी व्याख्या की है, उससे भी अर्थ स्पष्ट नहीं होता। **शेषान् अक्षतान् शिरसि शिर एकदेशे मस्तके इत्यर्थः। कृत्वा अक्षतै- रलङ्कृत्य इत्यर्थः।** टीकाकार के अनुसार कृ यहां 'अलंकृत करना, सजाना' अर्थ की वाचक है। यह उचित प्रतीत नहीं होता। चावलों से सिर को कैसे विभूषित किया जा सकता है। राम के अयोध्या से प्रस्थान जैसे वेदनापूर्ण अवसर पर इस अलंकरण का औचित्य भी क्या था ? शिरसि का 'शिर एकदेशे' अर्थ करना भी खींचातानी मात्र है। उपर्युक्त पद्य में कृ धातु 'फैंकना, बरसाना' अर्थ में प्रयोग की गयी प्रतीत होती है। कौसल्या ने राम के वन-गमन के समय उसके सिर पर अक्षत बरसाकर/फैंक कर उसे विदाई दी। आज भी विदाई की यह विधि कई भागों में प्रचलित है। अतः कृत्वा का 'प्रक्षिप्य, अभिवर्ष्य' अर्थ करना अधिक उपयुक्त होगा। शिरसि अक्षतान् प्रक्षिप्य, राममाशीर्भिः संवर्ध्य इति पिण्डितोऽर्थः।

कृ धातु वस्तुतः रत्नगर्भा है। इसके कोष में न जाने कितने मूल्यवान् रत्न समाहित हैं। सतत अध्यवसाय और अन्वेषण से ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है।

-7/34, पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर (राज.)

विश्वज्योति पत्रिका सम्बन्धी विद्वद्-विचार

–डॉ० सत्यपाल शर्मा

विश्वज्योति का अगस्त अंक मैंने रुचिपूर्वक पढ़ा है। पिछले कुछ वर्ष से देख रहा हूँ कि पत्रिका का पूरा फॉरमैट बदल गया है। रूपाकार भी कंप्यूटरीकृत होने से सुस्पष्ट और सुपाठ्य हो गया है। इसमें प्रकाशित होने वाले लेख शोधपरक तो हैं ही ज्ञानवर्धक और प्रेरक भी कम नहीं होते। इनमें हमें प्रायः प्राचीन भारत के कालजयी साहित्यिक शाहकारों की झांकियाँ मिलती रहती हैं और हमें अपने विस्मृतप्राय गौरवमय अतीत का परिचय प्राप्त होता है। प्रस्तुत अंक में प्रकाशित डॉ० लक्ष्मी राणा का लेख 'उत्तररामचरित एवं कुंदमाला में अंगीरस-साम्य' एक उत्तम तात्विक समीक्षा होने के साथ-साथ मर्म को छूनेवाला एक स्वायत्त रचनाकर्म भी है। कुमाऊँ-गढ़वाल को सचमुच सरस्वती माँ का वरदान प्राप्त है कि यहाँ ऐसे तत्वान्वेषी महान् साहित्य-साधक उत्पन्न होते हैं।

प्रोफैसर डॉ० भवानीलाल भारतीय का आलेख 'संस्कृत सूक्तियों का वैविध्य' कुछ चुनिन्दा सुभाषित वचनों द्वारा हमारे सामने जीवन्त और ज्वलन्त प्राचीन भारत की एक स्पष्ट झांकी प्रस्तुत करता है। यहां हमें भारतभू की सांस्कृतिक एकात्मता की भी एक हल्की-सी झलक देखने को मिलती है। परन्तु प्रस्तुत लेख में बौद्ध नैयायिक और महान् दार्शनिक आचार्य धर्मकीर्ति की तात्विक समीक्षा के लिए 'कुत्सापूर्ण आक्षेप' शब्द का प्रयोग मुझे कुछ रुचिकर नहीं लगा। तत्वान्वेषि दार्शनिक, वैज्ञानिक विश्लेषण और तार्किक पद्धति से ही बात करते हैं। वे सामाजिक मान्यताओं और लोकप्रचलित विश्वासों से ऊपर उठ कर तत्व तक पहुंचने का प्रयास करते हैं। वे वस्तुतः अपने प्रतिपक्षी की न खिल्ली उड़ाते हैं और न उस पर प्रहार ही करते हैं। इन स्वतंत्रचेता तत्त्वसाधकों को हम हिन्दू और बौद्ध इन दो डिब्बों में बन्द नहीं कर सकते। भारतीय सामाजिक जीवन में पाई जाने वाली विचार, विश्वास और आस्था और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ने हमारी चिन्तन, मनन और विचारमंथन की परम्परा को ऊर्जा प्रदान की है और इसे सतत विकासपथ पर अग्रेसर किया है।

प्रस्तुत जो पांच आस्थाओं की आलोचना हुई है उसमें केवल तत्त्वदृष्टि का प्राधान्य है लोकप्रचलित मान्यताओं की निन्दा नहीं है। समाज उपयोगितावाद पर चलता है और दार्शनिक हमेशा तत्त्वदृष्टि रखता है और मान्यताओं से हमेशा ऊपर उठ

कर बात करता है और इन्हें प्रमाणसिद्ध नहीं मानता है। तत्त्वदृष्टि से देखें तो वेदवचन भी अन्तिम सत्य नहीं माने जा सकते दार्शनिक चिन्तन में किसी भी श्रद्धाजन्य मान्यता का कोई स्थान नहीं होता। अन्तिम सत्य को तो आधुनिक विज्ञान भी अभी तक खोज नहीं पाया है। साक्षात्कृतधर्मी वैदिक ऋषियों ने अन्तःप्रज्ञा से जो देखा-अनुभव किया उसे सही-सही कह दिया। वे भी सदैव जिज्ञासु बने रहे और किसी अन्तिम निर्णय और निष्कर्ष तक नहीं पहुंच पाए।

हिन्दूदर्शन ईश्वर नाम के किसी अस्तित्व को मान्यता नहीं देता। अल्लाह और गॉड की अवधारणा क्रमशः इस्लाम और ईसाईअत में है। हम सृष्टि का सृजन हुआ नहीं मानते। इसे विकसित हुई मानते हैं। यह विकास-प्रक्रिया अभी भी चल रही है। अतः किसी देहधारी काल्पनिक ईश्वर का स्वतः ही निषेध हो जाता है। वैसे परिवर्तन या विकास के नाटक में मुख्य भूमिका निभाने वाले अणु-परमाणु की सर्वत्र व्याप्ति को ही यदि हम ईश्वर कहदें तो किसी भी तत्त्वदर्शी को इस पर आपत्ति नहीं होगी।

गंगास्नान की पावनता का विश्वास और पेड़पूजा की परम्परा ये दोनों बातें हमने राष्ट्रभाव की विकास-प्रक्रिया से प्राप्त की हैं। हमारा विश्वास तोड़ने में नहीं जोड़ने और जुड़ने में है। हमने जिन-जिन भी बनवासी जनजातियों को अपनाया है उन-उन के लोक कल्याणकारी विश्वासों को भी श्रद्धापूर्वक आत्मसात् कर लिया है। वृक्षों और नदियों में देवत्व की प्रतिष्ठा इसी मिलन और सामञ्जस्य का फल है। तत्त्वदर्शी नैयायिकों ने परोक्ष रूप में उन लोगों को नष्टबुद्धि कहा है जो नदीस्नान की पावनकारिता और पेड़पूजा की पुण्यपरकता की अन्तरंग भावना को दरकिनार कर इन्हें मात्र धार्मिक औपचारिकता ही मान रखा है। ब्राह्मणत्व का अभिमान जैसी बातें सामन्तवाद की देन हैं। तत्त्वदर्शन से इनका कोई संबन्ध नहीं।

हमें यह नहीं समझना चाहिए कि हिन्दू और बौद्ध ये दो अलग-अलग धर्म हैं। यथार्थ स्थिति यह है कि ये दोनों सामाजिक, सांस्कृतिक और संवैधानिक दृष्टि से भी एक हैं। हम तो बल्कि यहां तक कहेंगे कि ये एकात्म भी हैं। दोनों के बीच वैचारिक स्तर पर आदान-प्रदान होता रहा है और इस से दोनों ही लाभान्वित हुए हैं। हमें इस बात पर गर्व होना चाहिए कि हमारे इस देश ने गौतम, कणाद, कपिल, व्यास अश्वघोष, नागार्जुन, दिङ्नाग धर्मकीर्ति और शान्तिदेव जैसे विश्वस्तर के दार्शनिक पैदा किए। जैनियों का अनेकान्तवादी यथार्थवाद, बौद्धों का नैतिक आदर्शवाद और यहां तक कि लोकायतों का भौतिकवाद, ये सब हमारे हैं। खण्डन-मण्डन तो चलेगा ही। इससे विचार-प्रक्रिया और विकास को बल मिलता है। अस्तु

–८७ लाजपतनगर (चीलगाड़ी) धर्मशाला (हि०प्र०)

धर्मानुशासित जीवन जिएं

– डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी

भारतवर्ष में धर्म का रूप बड़ा व्यापक रहा है। जिसे हम हिन्दू-धर्म कहते हैं, वह हिन्दू-धर्म नहीं अपितु विशिष्ट समाज या जाति है। धर्म को राष्ट्रबल स्वीकार किया गया है। मनुष्य के समान राष्ट्र, साहित्य एवं धर्म के भी यह तीन रूप प्राप्त होते हैं। प्रत्येक मनुष्य के जीवन या व्यक्तित्व के तीन अंग परिचय देते हैं- विचार, साधना और कर्म। प्रत्येक सम्प्रदाय, मत, जाति और समाज में धर्म के यह तीन अंग-दर्शन, साधना और व्यवहार देखे जा सकते हैं। फलस्वरूप कोई मत या धर्म दर्शनप्रधान हो जाता है तो कोई साधना या व्यवहारप्रधान। हिन्दू-धर्म दर्शन-प्रधान है। भगवान् व्यास जी कहते हैं, 'मैं दोनों हाथ उठाकर पुकार रहा हूँ, किन्तु कोई मेरी बात सुनता ही नहीं। अरे, जिससे धन तथा काम-भोग मिलते हैं, उस धर्म का आचरण क्यों नहीं करते?'

मैं यहां पर अन्य धर्म व सम्प्रदाय की चर्चा नहीं करना चाहता। जहां कर्म का निर्णय कयामत के समय होता है, वहां धर्म एक निश्चित समय उपासना करने, सातवें दिन प्रार्थना कर आने तक सीमित हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। वैसे वे भी धर्म हैं और वे सम्पूर्ण जीवन को अनुशासित रखने की क्षमता रखते हैं, परन्तु उनमें प्रमाद को अवकाश बहुत मिलता है, यह तो स्वीकार करना ही होगा।

अपना हिन्दूधर्म-सनातनधर्म प्रारब्ध को स्वीकार करता है। वह पुनर्जन्म को मानता है। पुनर्जन्म को स्वीकार करने का अर्थ है कि प्रकृति के एक तथ्य को स्वीकृति देना, और वह तथ्य है बीज-वृक्ष-न्याय। मनुष्य खेती करता है अथवा वृक्ष लगाता है। वृक्ष या अन्न में अंकुर आने, उगने व बढ़ने तथा फल देने में समय लगता है। खेत को खाद-पानी तथा अन्य प्रकार की अनुकूलताएं अपेक्षित होती हैं। कुछ प्रतिकूलताएं बीज को या अंकुर को मार देती हैं। कुछ वृक्ष को अथवा फसल को दुर्बल कर देती हैं। सर्वत्र अनुकूलता हो तो एक बीज कई वर्षों तक फल उत्पन्न करता है। इसी तरह आज एक किया गया कर्म कालान्तर में अवश्य फल देता है। राष्ट्र, स्थान, विधि, समय कर्म के उपकरण, कर्त्ता की योग्यता एवं

सावधानी तथा श्रद्धा आदि अनेक बातों की अनुकूलता उस कर्म के पूर्ण फल हेतु अपेक्षित है। इनकी प्रतिकूलता कर्म को निष्फल कर सकती है अथवा उसके फल को घटा सकती है।

निश्चय ही कर्म अपना फल देता है और भविष्य में , जन्मान्तर में देता है। इस वर्ष की बोई हुई फसल आगे ही खाई जाएगी। इसी तरह पिछले जन्म के कर्मों से इस जन्म में भोगने के लिए प्रारब्ध बना है। जीवन के सुख-दु:ख, हानि-लाभ, यश-अपयश, संयोग-वियोग, आयु तथा मृत्यु प्रारब्ध के अनुसार मिलते हैं। यह दूसरी बात है कि तत्काल खा लिए जाने योग्य जैसे कुछ शाकादि होते हैं, वैसे ही अनुष्ठानादि कुछ कर्म प्रारब्ध बनकर तत्काल फल देने वाले भी होते हैं।

अपने जीवन का निर्माण भूतकालीन कर्मों के अनुसार बना हुआ है। वह हमारे सिर शक्तिपूर्वक थोपा हुआ किसी निरंकुश स्वेच्छाचारी का विधान नहीं है। इस स्वीकृति का निष्कर्ष यह है कि जीवन-निर्माण के प्रति हम उत्तरदायी हैं। हम जिस प्रकार चाहें अपना भावी जीवन निर्माण कर सकते हैं।

प्रारब्ध और पुनर्जन्म की इस मान्यता के कारण अपना सम्पूर्ण जीवन धर्मशासित है, क्योंकि धर्म-सत्कर्म ही उत्तम भोग एवं अभीष्ट अर्थ का उत्पादक हो सकता है। पुरुषार्थ का प्रयोजन अपने लिए अगामी जीवन का निर्माण है। वर्तमान जीवन में भोग या अर्थ की उपलब्धि में पुरुषार्थ प्राय: सहायक नहीं है। वह तो प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त होगा। यदि फल-दानोन्मुख प्रारब्ध को रोककर तुरन्त फलदायी नए प्रारब्ध का निर्माण प्रचण्ड पुरुषार्थ-सकाम अनुष्ठानादि द्वारा न कर लिया जाय। इस जीवन में अर्थ और भोग मिलने वाले हैं लेकिन प्रारब्ध के अनुसार। इस जन्म के, कर्म के, सत्कर्म के अनुसार वे भावी जीवन में भी मिलेंगे। अतएव अर्थ एवं भोग का मूल भी धर्म ही है। धर्म-आचरण ही जीवन में प्रधान होना चाहिए।

जीवन का लक्ष्य क्या ? धन जुटाना? यदि धन का कोई प्रयोजन नहीं है तो धन जुटाने का क्या अर्थ रहेगा? धन बैंक या पास-बुक में जमा है तो उसका क्या अन्तर है? अन्तर तो तब है जब उस धन का उपयोग करना हो। उपयोग दो बातों से सम्भव है- सुखोपभोग तथा धर्म। धर्म के लिए धन की कोई आवश्यकता नहीं है, हाँ धर्म में धन का उपयोग उचित है। एक गरीब भी सरलता से, मात्र सेवा से उतना धर्म अर्जित कर ले सकता है, जितना बड़े से बड़ा धनी व्यक्ति अर्जित कर लेगा। दरिद्र या गरीब का एक पैसे का दान धनी के करोड़ रुपए के दान जितना ही पुण्यफल देगा।

धन का उपयोग भोग, यह तथ्य कहा-सुना जा सकता है। परन्तु क्या यह सत्य है? मात्र धन से ही भोग नहीं मिलता। भोग-सुख की प्राप्ति के लिए अनुकूल प्रारब्ध भी तो चाहिए। मैंने स्वयं ऐसे धनी-मानी लोगों को देखा है जो शरबत या जूस भी नहीं पचा पाते। लौकी उबालकर उसका रस पीकर उन्हें जीवन घसीटना होता है। ऐन्द्रियिक शक्ति, अपेक्षित है भोग के लिए और असंयमित भोग करने वाले से प्रकृति वह शक्ति छीन लेती है।

वास्तविक अर्थ यह है कि जीवन का लक्ष्य न अर्थ है न भोग। लक्ष्य तो है मानव-जीवन का जन्म-मृत्यु के चक्र से मोक्ष। उस मोक्ष का तथा अर्थ और भोग का भी साधन धर्म है। अतएव मनुष्य के जीवन का आधार, जीवन का चालक एवं नियन्त्रक धर्म को होना चाहिए। मनुष्य का जीवन वही ठीक है जिसका जीवन धर्मशासित है।

धर्मशासित जीवन का अर्थ है- धर्म द्वारा अर्जित किया गया अर्थ। जो अर्थ धर्म से प्राप्त नहीं होता, जो धर्म का पोषण नहीं करता, वह हमारे लिए अवश्य अवांछनीय होना चाहिए, क्योंकि जीवन की शुद्धि का आधार अर्थ ही है। यह अर्थ यदि धर्म से अर्जित नहीं होगा, तो उससे प्राप्त समस्त उपकरण अपवित्र ही होंगे। अपवित्र अर्थ, अपवित्र उपकरण से धर्म नहीं होता। उसके द्वारा किया गया धर्म कार्य फलवान् नहीं होता। मनु महाराज कहते हैं- कि जब पवित्रता की बात करें तो संसार में जितनी भी पवित्रता प्रदान करने वाली बातें हैं उनमें धन या किसी भी वस्तु विषयक पवित्रता सर्वश्रेष्ठ है। अर्थात् न कि जल द्वारा या मिट्टी इत्यादि के द्वारा प्राप्त पवित्रता। जल और मिट्टी से तो शरीर की सफाई मात्र होती है। पवित्र तो वही है जो धन-विषयक पवित्र हो, लोभ, लालच इत्यादि से रहित हो। (मनु.५.२०६)

तात्पर्य है कि- पामर, विषयी, साधक और सिद्ध- यह चार कक्षाएं मनुष्य की हैं। जो इन्द्रियों के भोगों को तथा उन भोगों की प्राप्ति के साधन धन को उचित- अनुचित किसी भी प्रकार जुटाने को तत्पर हैं, तो वह पामर है। सम्पूर्ण विश्व में इस श्रेणी के लोग सर्वाधिक हैं। जो धर्मपूर्वक धनोपार्जन करता और उस धर्मोपार्जित धन से अपने वर्णाश्रम-धर्महेतु विहित जो सुखोपभोग हैं, उनको ही भोगता है, वह विषयी है। धर्मपूर्वक उपार्जित धन को धर्म-कार्य, सेवाकार्य में लगा देने वाला तथा धर्मपूर्वक जिन विषयों का सेवन किया जा सकता है, उनका भी त्याग करते हुए मन और इन्द्रियों का संयम करने वाला साधक है। इस साधन के दृढ़ एवं परिपक्व अभ्यास से जिनके राग-द्वेष, देहासक्ति, अहंकार तथा अविद्या

का विनाश हो गया, परमात्व-तत्व का साक्षात्कार करने वाले वे महापुरुष सिद्ध कहे जाते हैं। मानव-जन्म का लक्ष्य उन्होंने सिद्ध कर लिया। मनुष्य पामर न बने, वह कम-से-कम ठीक विषयी बनें। जो विषयी हैं, वे साधक बनें और साधक सिद्धपद प्राप्त करें, यही मानवधर्म की प्रेरणा व लक्ष्य है। अतएव अपना धर्म मनुष्य के पूरे जीवन को शासित करता है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जो धर्म के शासन से बाहर हो।

किसी वस्तु में, किसी क्रिया में क्या गुण-दोष हैं- यह समझना एक बात है। नीतिशास्त्र, आयुर्वेद आदि इस गुण-दोष का परिचय कराते हैं। लेकिन धर्मशास्त्र मनुष्य के शुद्ध-बुद्ध चरित्र-पवित्र हृदय का निर्माण करने के लिए विधान करता है। क्या आप जानबूझकर कोई ऐसी क्रिया कर सकते हैं, जिसका आपके मन पर कोई प्रभाव न पड़े? जब जानबूझकर, संकल्पपूर्वक कोई क्रिया की जायगी तो उसका मन पर कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ेगा ही। अतएव जो धर्म मन के निर्माण चित्त-शुद्धि को ही मुख्य मानता है, वह किसी भी क्रिया को अपने अनुशासन से बाहर कैसे रहने दे सकता है? कोई पदार्थ जो आपके सम्पर्क में आता है, वह सजीव हो या निर्जीव, आप पर एक प्रभाव छोड़कर जाता है। इसलिए जो आपके मनोनिर्माण का दायित्व रखता है, वह आपकी प्रत्येक चेष्टा में, आपके सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में अपना अनुशासन रखेगा ही। ऐसा न करे तो वह अपूर्ण धर्म होगा।

'धारणाद् धर्मः' जो धारण करे, मनुष्य के अभ्युदय, निःश्रेयस दोनों जिस पर निर्भर हों वह धर्म है।

धर्म की सम्पूर्णता इसी में है कि वह सम्पूर्ण जीवन का धारण एवं शासन करता है। जो जीवन के किसी एक अंग को भी अपने अनुशासन से बाहर छोड़ देता है, वह धर्म उतने अंश में अपूर्ण है। मानव-जीवन की भी पूर्णता इसमें है कि उसका पूरा जीवन, उसके जीवन की प्रत्येक क्रिया धर्म के रूप अनुशासित हो।

-८६/३२३ देवनगर, कानपुर-२०८००३ (उ०प्र०) मो०: ०९२३५५११०८३

ताम्रपर्णी

– डॉ. अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'

वैसे तो अनेक छोटी-२ सदानीरा सरिताएं भारतभूमि में बहती हैं और अपने प्रवाह-पथ में आने वाली किसी नदी में आत्मविलयन कर देती हैं। परन्तु, दक्षिण भारत की लघुगंगा ताम्रपर्णी इसका अपवाद है। यह तमिलनाडु में मलयपर्वत की एक हजार, आठ सौ, अड़तालीस मीटर ऊँची पहाड़ी पोदिगाई/पोतिगै से उत्पन्न होती है तथा मात्र एक सौ बीस किलोमीटर तिरूनेलबल्ली जिला में बहकर सीधे मनार की खाड़ी-दक्षिण समुद्र में गिरती है। चौबीस किलोमीटर तक पर्वतीय ढलान पर बहने के बाद ताम्रवर्णी कृषि के अभिषेचन में सहायक बनती है। भूगोलवेत्ताओं ने पश्चिमी घाट के पूर्वी ढलान से उद्गत तांब्रवारी नदी से इसकी एकता सिद्ध की है। पोदिगाई से अवतरण के समय, यह कई दर्शनीय प्रपातों का निर्माण करती है, जिनमें 'कल्याणतीर्थ' प्रपात नब्बे मीटर ऊँचा एवं सर्वाधिक विशाल है। 'बाणतीर्थ' 'अगस्त्य' और 'पापनाशम्' प्रपात भी ताम्रपर्णी के प्रचण्ड प्रवाह के परिचायक हैं।

पेयारु, पाम्बारु, उल्लाऊ, कारियाऊ, चेर्रवैय़ारु, मणिंमुत्तारु, वराह नदी, करुणा, चित्रा, कयत्तारू इत्यादि ताम्रपर्णी की सहायक नदियां हैं। उसके तटों पर अनेक ऐतिहासिक गाँव, कस्बा, ताल्लुका एवं शहर अवस्थित हैं। वीरभूमि तिनवल्ली का इतिहास इसी के किनारे विकसित हुआ है। ताम्रपर्णी के निकट 'कडयम्' नामक गांव में श्री चेल्लम अय्यम की सप्त-वर्षीया पुत्री 'चेल्लमाल' के साथ सन् १८९७ ई० में राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यम् भारती का विवाह सम्पन्न हुआ था। कविवर भारती की ओजोमयी भारती आज भी मानो ताम्रपर्णी की लहरों को अनुगुंजित कर रही है। विभिन्न नदी-संगमों, तीर्थों तथा देवालयों ने उसकी पार्श्वभूमि को जन-श्रद्धा का केन्द्र बनाया है।

'ताम्रपर्णी' शब्द बावली या छोटे और पक्के तड़ाग के अर्थ में प्रयुक्त मिलता है। सम्भव है कि बड़ी नदियों की अपेक्षा लघु आकार होने के कारण इस नदी को ताम्रपर्णी नाम दिया गया है। ताँबे-जैसा रंग होने के कारण इसको 'ताम्रपर्णी' भी कहा जाता है।

तमिल भाषा का 'पोरूणै' शब्द इसी अर्थ का वाचक है, जो तमिल-साहित्य में इसी नदी के लिए व्यवहृत है। यह भी मान्यता है कि इसके जल में तांबा मिलता है- इसलिए इसे ताम्रपर्णी कहते हैं। इसी दृष्टि से ताम्रपर्णी, ताम्रमयी, ताम्रपर्णिका और ताम्रा तथा मलयाचल से उद्‌गम होने के कारण मलयाद्रिसुता, मलयनन्दिनी, मलयजा, मलयाद्रिकुमारी एवं मलयाद्रिनन्दिनी और अगस्त्य के द्वारा प्रवाहित किये जाने के कारण कुम्भजनन्दिनी, कुम्भजकन्या, कुम्भपुत्री तथा शंख-मोती प्रदान करने की प्रसिद्धिवश शंखदा, कम्बुदा एवं मौक्तिका नामों से भी ताम्रपर्णी को सम्बोधित किया जा सकता है।

भारत की विभिन्न पर्वत-श्रृंखलाएं, मानो शिव की सुविस्तृत जटाएँ हैं और उनसे उद्‌गम पाने वाली सरिताएं गंगा के ही विविध रूप हैं। देश की नैसर्गिक छटाओं एवं भौगोलिक छवियों को पुराणकारों ने बड़े ही प्रतीकात्मक, रहस्यमय तथा कवित्वपूर्ण ढंग से मिथकबद्ध किया है। शायद ही कोई नदी ऐसी हो, जिसके साथ अतिमानवीय आख्यान किसी न किसी रूप में न जुड़ा हो। इन दिव्य कथाओं से मुग्ध होकर, श्रद्धाप्रवण भारतीय जनता अन्धविश्वासी, पुरोहित पूजक, पाखण्ड समर्थक एवं रूढिवादी भी बनी तथा जाने-अनजाने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता के सूत्र में भी आबद्ध हुई। अब पुराणों की चमत्कारवादी निर्वचनशैली अधिकांश रूप से अप्रासंगिक सिद्ध हो चुकी है। अतः पुराणाख्यानों को युगानुरूप बुद्धिसंगत ढंग से तथ्यधर्मी भावभूमि पर प्रस्तुत करना सर्वथा वरेण्य है, साथ ही यह भी ध्यान रखना है कि सहस्राब्दियों से जन-मन में प्रतिष्ठित भक्ति की भावना पर प्रहार न हो।

ताम्रपर्णी के अवतारक महर्षि अगस्त्य हैं। कथा है कि हिमालय पर शिव-पार्वती की विवाह-वेला में निखिल ब्रह्माण्ड के देव, ऋषि, मानवादि एकत्र हुए। दक्षिण भारत के ऋषि-मुनि भी उमा-शम्भु का परिणय देखने के लिए हिमाचल के अतिथि बने, परिणामतः दक्षिण प्रदेश हलका होकर ऊपर उठ गया। इस स्थिति से चिन्तित शिव ने अपने निकटस्थ महर्षि कुम्भज को दक्षिण में जाने का आदेश इस आश्वासन के साथ दिया कि वे नवदम्पति रूप में उन्हें मलयाचल पर दर्शन देंगे। प्रस्थान के समय घटयोनि की प्रार्थना पर शिव ने उनके कमण्डलु में अपनी जटा खोलकर गंगा की एक लघु धारा भी आपूरित कर दी। अगस्त्य मार्ग में विन्ध्याचल तथा सह्याचल पर होते हुए दक्षिण भारत में आ गये और मलयाचल की पोतिगै पहाड़ी पर अपना आश्रम बनाकर रहने

लगे। उनकी गुरुता से वहां की लघुता समाप्त हो गयी। जन-जीवन ज्ञान-गरिमा के आलोक में आमज्जित हो उठा। कुछ समय के बाद नव-विवाहित चन्द्रशेखर ने पार्वती सहित वहीं आकर उन्हें दर्शन दिये और कमण्डलुबद्ध गंगा को जन-कल्याणार्थ प्रवाहित करने की आज्ञा दी। अगस्त्य के कमण्डलु से परिमुक्त गंगा पिघले ताँबे की भाँति समुन्नत गिरि-शिखर से पृथ्वी की ओर चल पड़ी तथा तीन धाराओं में विभक्त होकर, दिशा-दिशा में बहती हुई और विभिन्न प्रपात, तीर्थ एवं पवित्र संगमों का निर्माण करती हुई सिन्धुदेव का कण्ठहार बन गयी।

भारतीय नदियों में वैराट्य के सन्दर्भ में गंगा और आकारिक लघुत्व के लिए ताम्रपर्णी उल्लेख्य है। ताम्रपर्णी के विश्व में तुलसीदास की उक्ति 'बड़ प्रभाव देखत लघु अहही' नितान्त सटीक है। यह चन्दनवनों के बीच होकर बहती है तथा शंख एवं मोती देने के लिए विख्यात है। विष्णुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वायुपुराण इत्यादि में भारत की पवित्र नदियों के साथ इसका सादर उल्लेख है तथा मुक्ता-शंख प्रक्षेपण करने वाली बात की भी पुष्टि होती है। सम्राट् अशोक के एक शिलालेख में भी इसकी चर्चा आयी है।

वाल्मीकि रामायण में दक्षिण दिशा में सीता की खोज करने के उद्देश्य से हनुमान् को जो मार्ग-निर्देश दिया गया है, उसमें मलयाचल पर तेजस्वी अगस्त्य के दर्शन और उनकी आज्ञा लेकर ग्राहमयी, चन्दनवनों द्वारा परिवेष्टित एवं प्रच्छन्न द्वीपशालिनी ताम्रपर्णी को तैर जाने का परामर्श है। जैसे कोई कान्ता युवती अपने कान्त से मिलती है, वैसे ही ताम्रपर्णी समुद्र का अवगाहन करती है-

तस्यासीननगस्याग्रे मलयस्य महौजसम्।
दृक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम्।।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातः प्रसन्नेन महात्मना।
ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम्।।
सा चन्दनवनैश्चित्रः प्रच्छन्नद्वीपशालिनी।
कान्तेव युवती कान्तं समुद्रमवगाहत।।[1]

महाभारत के वनपर्वगत तीर्थयात्रा पर्व में धौम्य मुनि भारत के विभिन्न तीर्थों की महिमा का वर्णन करते समय युधिष्ठिर को ताम्रपर्णी की महिमा भी बतलाते हैं- हे युधिष्ठिर! अब मैं उस ताम्रपर्णी का महत्त्व बतला रहा हूँ, जिसके तट पर मोक्ष के इच्छुक देवता तपस्या करते हैं। हे भारत! दक्षिण में ताम्रपर्णी के साथ तीनों लोकों में विख्यात गोकर्ण तीर्थ है। यह प्रचुर जल से युक्त, पुण्यमय, कल्याणकारी एवं शुभ है, जो लोग अशुद्धात्मा हैं, उनके लिए

१. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड, ४/१६,१७,१८

यह गोकर्ण-ह्रद परम दुर्लभ है। वहां वृक्ष-तृणादि से सम्पन्न, फलयुक्त, पवित्र देव-तुल्य पर्वत पर महर्षि अगस्त्य के शिष्य का आश्रम है। वहीं श्रीसम्पन्न, मणिमय और कल्याण-कारक वैदूर्य पर्वत है तथा बहुत से फल-मूल जल से समृद्ध अगस्त्य का आश्रम है।[२]

कालिदास के दिग्विजयी रघु जब दक्षिण में अपना विजय अभियान लेकर पहुँचते हैं, तो वहां के पांड्य राजा दक्षिणोदधि से सम्बद्ध ताम्रपर्णी से प्राप्त मोतियों को अपने संचित यश के समान उनके चरणों पर अर्पित कर देते हैं।[३]

नैषधकार श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य की नायिका दमयन्ती के मुखोच्चारित वर्णाक्षरों की स्वच्छता-शुद्धता के लिए ताम्रपर्णी के तट पर उत्पन्न मोतियों का स्मरण किया है-

ताम्रपर्णीतटोत्पन्नैर्मौक्तिकैरिन्दुकुक्षिजैः।
बद्धस्पर्धतरा वर्णाः प्रसन्नः स्वादवस्तवः।।[४]

राजशेखर ने काव्यमीमांसा के सप्तदश अध्याय 'देशकाल विभाग' में दक्षिणापथ की अनेक पुण्यसलिलाओं में ताम्रपर्णी को भी उल्लिखित किया है- 'नर्मदा तापी गोदावरी कावेरी भैमरथीवेणाकृष्णवेणी तुंगभद्रा ताम्रपर्ण्युत्पलावती रावणगंगाद्या नद्यः।' मलयाचल के वर्णन में भी यायावरीय ने उसकी महिमा का उत्कीर्तन किया है- जिसको मोतियों की उत्पादिका ताम्रपर्णी- जैसी उत्तम नदी उपत्यका में रहकर अर्चित करती है, उस रत्नेश्वर एवं रत्नों के महानिधान मल्य को कुम्भज अगस्त्य पवित्र करते हैं।[५]

इसी प्रकार कविवर धोयी-कल्पित कनकनगरी की गन्धर्वकन्या कुवलयवती अपने प्रिय लक्ष्मणसेन के पास दूत पवन को भेजते समय पथ-परिचय में मलयाद्रि के साथ ताम्रपर्णी और तत्तटस्थ उरगपुर का चित्रण करती है- मलयाचल की परिसर में केवल दो कोस आगे बढ़ने पर तुम्हें पृथ्वी के आभूषण स्वरूप पांड्य देश के दर्शन होंगे। वहां ताम्रपर्णी के तट पर बसे हुए उस उरगपुर में विचरण कर लेना, जो सुपाड़ी के घने वृक्षों से आच्छादित है।[६]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कृत-साहित्य में इस नदी का महत्त्व प्रचुर रूप में विद्यमान है। आदिकवि वाल्मीकि ने ताम्रपर्णी को मगरमच्छों से भरपूर, चन्दनवनों से सुशोभित तथा छिपे हुए टापुओं वाली महानदी कहा, तो व्यासजी ने उसे मोक्षदायिनी नदी के रूप में देखा। कालिदास ने ताम्रपर्णी से प्राप्त धवलाभ मोतियों को यश के उपमान, श्रीहर्ष ने

२. महाभारत, तीर्थयात्रापर्व, ८८/१५,१६,१७,१८ ३. रघुवंश, ४/५०
४. नैषध, २०/२१ ५. काव्यमीमांसा, देशकाल विभाग ६. पवनदूत, छन्द-८

उसे वर्णोच्चारण की शुद्धता के सादृश्य, राजशेखर ने मोतियों के लिए कामधेनु और धोयी ने सुपाड़ियों के वृक्षयुक्त तटिनी के रूप में प्रस्तुत किया है। प्राय: सभी ने ताम्रपर्णी के साथ मलयाचल, अगस्त्य एवं मोतियों की चर्चा की है। इसके अतिरिक्त पुराणों में उसके कर्मकाण्डिक माहात्म्य का निरूपण भी प्राप्त होता है। तमिल तथा हिन्दी की प्रख्यात लेखिका श्रीमती सरस्वती रामनाथ ने अपनी पुस्तक 'कावेरी' में ताम्रपर्णी के विषय में लिखा है-

'तमिल साहित्य में 'पोरुणै' का स्थान ऊंचा है। कविगणों ने अपने काव्यों में इसका मोहक वर्णन किया है- पोरुणै अर्थात् ताम्रपर्णी बड़ी वेगवती है। स्वभाव से चंचल और उछल-कूद मचाने वाली है। अपने दोनों तटों पर शिवालयों का दर्शन करती हुई चलती है। 'मुल्लै' प्रदेश की मादक मधु और दुग्ध-धारा को अपनी लहरियों में समेटती हुई, कस्तूरी और चन्दन से महकते फूलों को बिखेरती हुई चलती है। पंचबाण के सुगन्धित फूलों को लहराती हुई हंसी पक्षियों से शोभित अपनी धारा को बड़ी मस्ती से बहाती शंखों को किनारों पर फेंकती हुई, फेन उगलती हुई वह बहती जायेगी। बाढ़ आ जाये, तो बड़ी उद्धत हो जाती है। कगार के वृक्षों को ढकेलती, किनारों को तोड़ती फुफकार उठेगी। इसका गर्जन सुनने वाले काँप उठेंगे। मुल्लै प्रदेश में अठखेलियाँ करती पोरुणै, 'मरुदम' प्रदेश में कृषकों के बजाये पम्बै, तुरही जैसे वाद्यों का रस लेती हुई यौवन की देहली पर आ खड़ी होती है। कदली के तने-सी कोमल, पुष्ट, गोलाकार जाँघें, नयी कोपल-सी लालिमा तन्वंगी लता-सी पतली कमर, हंसिनी-सी मदमस्त चाल लिये पोरुणै नवोढ़ा तरुणी का मादक तारुण्य लिये 'नेय्दल' प्रदेश में प्रवेश करती है। उसका अंग-अंग यौवन से पूरित है। कोमल सुगन्धित फूलमाला उसके गले में शोभा दे रही है। दुग्धफेन-सा श्वेत दुकूल धारण किये, सुनहले आभूषणों से सुसज्जित वह अपने प्रियतम समुद्रराज की सुपुष्ट छाती से लिपट जाती है।'

उक्त उद्धरण से यह भी सुस्पष्ट है कि ताम्रपर्णी न केवल संस्कृत कवियों की लाड़िली नदी है, प्रत्युत दक्षिण भाषाओं के काव्य में भी उसको पर्याप्त समादर मिला है। सरस्वती रामनाथ ने तमिल काव्य के कुछ अंशों का ही हिन्दी अनुवाद दिया है। ताम्रपर्णी विषयक दक्षिणी साहित्य की मूल कविताओं का सौन्दर्य और भी मनोरम है।

-गोला गोकर्णनाथ-खीरी (उ.प्र.) २६२८०२

कबीर का सामाजिक चिन्तन

– डॉ. आशा मेहता

युगद्रष्टा, निर्भीक एवं समाजसुधारक संत कबीर ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप के उपासक थे। वे एकेश्वर में विश्वास करते थे और ज्ञान को सर्वोपरि मानते थे। कबीर के समय में धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विषमताओं एवं विसंगतियों के कारण चारों ओर अशांति व्याप्त थी। आर्थिक दृष्टि से भी समाज की स्थिति अत्यन्त ही दयनीय थी। समाज की दुरवस्था से पीड़ित होकर उन्होंने दो टूक शब्दों में सभी को खरी-खोटी सुनायी। इसीलिए प्रायः सभी विचारक उनके विषय में यही प्रश्न करते हैं कि कबीर कवि थे या समाज-सुधारक ? वास्तविकता तो यह है कि उनके ये दोनों रूप एक ही सिक्के के दो पहलू थे। आज का मानव-समाज भी उन्हीं समस्याओं से त्रस्त है जो समस्याएं कबीर के युग में थीं। इस कारण कबीर के सामाजिक चिन्तन पर विचार आज और भी अधिक प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण बन गया है।

इस्लाम धर्म के आगमन से समाज में हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य संघर्ष प्रारंभ हो गया था। दोनों धर्मों के पाखंड, आडम्बर, रुढ़िवादिता, अंधविश्वास और कट्टरता पर उन्होंने अपनी खण्डन शैली में एवं प्रखर वाणी से प्रहार किया ताकि समाज को चिन्तन तथा आचरण की नयी दिशा दी जा सके। उन्होंने जहां हिन्दुओं को उनकी कट्टरवादिता के लिए फटकार लगाते हुए उनको आडम्बरों से दूर रहने की प्रेरणा दी वहीं उन्होंने मुसलमानों की कट्टरता का भी विरोध करते हुए उनके अंधविश्वासों का मजाक बनाया है।

सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने पक्षपात रहित होकर सच्चे हृदय से जो देखा और जो अनुभव किया, उसे बिना किसी लाग-लपेट के डंके की चोट पर कहा। उनके सामाजिक चिन्तन के विषय में जितना कहा जाए कम है और जितना लिखा जाए उतना कम है, क्योंकि कबीर का ज्ञान स्वानुभूति से जुड़ा है और वे सत्य को ही मानव-जीवन का सबसे बड़ा धर्म मानते हैं। इसीलिए उनकी कथनी-करनी में समानता है। यही कारण है कि उनकी बातें सामने वाले के दिल-दिमाग

पर चोट करती हैं और सोचने के लिए विवश करती हैं।

कबीर के समय में ऊँच-नीच, आर्थिक भेदभाव के कारण अमीर-गरीब, धार्मिक भेदभाव के कारण हिन्दू-मुसलमान धर्म, शैव-शाक्त-वैष्णव आदि पंथों की विषमताएं समाज में विद्यमान थीं। इन समस्याओं का कारण मनुष्य का अहंकार एवं स्वार्थ की भावना थी। कतिपय स्वार्थी लोग मनुष्य-मनुष्य के मध्य संघर्ष करवा कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। इस संघर्ष में निर्दोष लोग मारे जाते हैं और दोषी अपने-आपको धर्म व समाज का ठेकेदार बताकर बेदाग बच निकलते हैं। इसीलिए कबीर कहते हैं-

कह हिन्दू मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना।
आपस में दोऊ लरि मूए, मरम न काहू जाना।।

उनके विचार से इस समस्या का एकमात्र समाधान है, सभी प्राणियों में ईश्वर का दर्शन या आत्म-तत्त्व की एकता-

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन मांहि।
ऐसे घटि घटि राम है, दुनिया देखे नांहि।।

कबीर जाति-पाति से ऊपर उठकर हरि भजन से ही मनुष्य को स्वीकार करने पर बल देते हैं-

जात-पांत पूछे ना कोई,
हरि को भजे सो हरि का होय।

उन्होंने अहंकार और लालच की वृत्ति को ही सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का कारण माना है। इसीलिए कबीर मानव को लालच से बचने का उपदेश देते हैं-

रूखा सूखा खाइ के, ठंडा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव।।

संत कबीर ने शारीरिक श्रम की महत्ता और संतोष को मानव जीवन के लिए अनिवार्य माना है। स्वयं कबीर गृहस्थ धर्म का पालन करते थे और जुलाहे का कार्य करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। ईश्वर से उनकी एक ही प्रार्थना थी-

सांई इतना दीजिए जा मे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाए।।

कबीर अहंकार करने वालों को सचेत करते हुए कहते हैं कि-

कबीर कहा गरबियो, काल गहै कर केस।
ना जांणै कहां मारिसी, कै घर कै परदेस।।

मनुष्य के मन से जब तक अहंकार नहीं मिटते, तब तक ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं। यह 'आपा' ही अहंकार है-

आपा मेट्या हरि मिलै, हरि मेट्या सब जाइ।
अकथ कहानी प्रेम की, कह्या न को पत्याई।।

कबीर ने गृहस्थ-धर्म को अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण माना है। वे घर छोड़कर वन जाने में विश्वास नहीं करते-

घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि बन नहि जावै।।

ईश्वर की साधना समाज के दायित्वों से पलायन करने के लिए नहीं वरन् समाज के कल्याण के लिए है। संत कबीर चाहे पाखंड का विरोध कर रहे हों या समाज में भेदभाव का जहर घोलने वालों को फटकार रहे हों या कर्मकाण्ड करने वालों पर व्यंग्य कर रहे हों, वे हर रूप में लोकमंगल की ही कामना करते हैं। उनके लिए मानव-धर्म सर्वोपरि है। वे हमेशा मानव-मानव के मध्य प्रेम, सद्भाव, सौहार्द्र एवं सहयोग की कामना करते हैं। जिसने प्रेम का पाठ पढ़ लिया, वही सही मायने में पंडित है-

पोथी पढ़िपढ़ि जग मुवा पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढै सु पंडित होय।।

जिस व्यक्ति के हृदय में ईश्वरीय प्रेम होगा, वही अपनी वाणी से दूसरों के मन को शीतलता प्रदान कर सकेगा। कबीर भी मनुष्यों से यही अपेक्षा रखते हैं-

ऐसी वांणी बोलिए, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होई।।

कबीर ने समाज को श्रेष्ठ एवं प्रगतिशील बनाने के लिए आचरण की दृढ़ता और नैतिक बल को अनिवार्य माना है। उनका आध्यात्मिक चिन्तन भी मानव-मानव की समानता और मानव में ईश्वर के दर्शन की कामना करता है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान परिस्थितियों में कबीर का सामाजिक चिन्तन और भी अधिक प्रासंगिक इसलिए बन गया है क्योंकि आज का मनुष्य भी बहुत अधिक अहंकारी और स्वार्थी हो गया है। संग्रह और लालच की प्रवृत्ति बढ़ गयी है। नैतिक मूल्यों का दिनों-दिन ह्रास होता जा रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति में समाज-चिन्तकों की महती आवश्यकता है जो कबीर की तरह भ्रष्ट आचरण करने वालों को ललकार सकें। कट्टरता एवं संकीर्णता से समाज को तोड़ने वालों को फटकार सकें और समाज को परस्पर सहयोग, सद्भाव के सूत्र में बांध सकें।

-विभागाध्यक्षा, हिन्दी, हरिदेव जोशी राजकीय कन्या महाविद्यालय
बाँसवाड़ा (राजस्थान)

अच्छी पुस्तकें हमारी मार्गदर्शक

– डॉ. अर्चना रानी वालिया

आज का असली विश्वविद्यालय है पुस्तकें। यह बात बिल्कुल ठीक कही गयी है। जीवन को स्वाभाविक और सुंदर बनाने में यदि किसी भौतिक वस्तु का चुनाव करना पड़े तो ज्यादातर लोग निश्चित ही अच्छी पुस्तकों का चुनाव करेंगे। ऐसी पुस्तकें हमें जीवन के नये रूप दर्शाती हैं, जीने का सही ढंग सिखाती हैं। दुखियों को वे ढॉढस बंधाती हैं, बुद्धिमानों को बल देती हैं।' एकान्त में वे हमें सहारा देती हैं, संसार और मनुष्य-जीवन की क्षणभंगुरता को भुला पाने में हमारी मदद करती हैं, हमारी निराशाओं को थपकियाँ देकर सुलाती हैं।' अच्छी पुस्तकों में मानव-हित-साधन का भाव आमतौर पर निहित होता है। पुस्तकीय ज्ञान के बल पर ही आज कला, विज्ञान, साहित्य, सूचनाक्रान्ति आदि विभिन्न क्षेत्रों में मानव ने ऊँचाईयों को छुआ है। हमारे लिए केवल इतना जरूरी है कि हम अपने लिए उचित पुस्तकों का चुनाव करें क्योंकि शास्त्र कहते हैं कि- ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है। ज्ञान की प्राप्ति के मुख्यतः दो मार्ग हैं- सत्संगति और स्वाध्याय। तुलसीदास जी ने सत्संगति की महिमा बताते हुए कहा है- 'बिन सत्संग विवेक न होई' परन्तु सत्संगति की प्राप्ति रामकृपा पर निर्भर है। यदि भगवान् की कृपा होगी तो व्यक्ति को सत्संगति मिलेगी। परन्तु पुस्तकें तो सर्वत्र सहजता से उपलब्ध हो जाती हैं। ज्ञान का महत्वपूर्ण स्रोत है- पुस्तकें। आज संसार की प्राचीनतम पुस्तकें भी हमें उपलब्ध हैं। प्रत्येक भाषा में विपुल साहित्य उपलब्ध है। प्रत्येक मनुष्य अपनी क्षमता के अनुसार अध्ययन करके अपने ज्ञान-क्षितिज का विस्तार कर सकता है।

आज शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत प्रगति हो रही है। मानव-सभ्यता के किसी भी दौर में इतनी बड़ी संख्या में पढ़े-लिखे लोग पृथ्वी पर नहीं रहे तो इसका श्रेय निश्चित ही पुस्तकों को जाता है। साहित्य की रचना का मूल उद्देश्य ही है कि वह हमें बुराईयों से दूर रखे और जीवन को आनंद से भर दे। स्पष्ट है कि साहित्य के प्रचार-प्रसार में पुस्तकों की सबसे बड़ी भूमिका होती है। सूचना के वर्तमान दौर

में चाहे कितने ही वैकल्पिक साधन उपलब्ध हों किन्तु पुस्तकों जैसा विश्वसनीय साथी ढूंढना कठिन है। पुस्तकों के बिना न तो विद्यार्थियों का काम चल सकता है और न ही शिक्षकों का। अच्छी पुस्तकों के ज्ञान से मनुष्य की मानसिकता व बौद्धिक शक्तियों का विकास होता है।

एक युग था जब पुस्तकों का प्रकाशन सम्भव नहीं था। किसी भी रचना को सुरक्षित रखने के लिए उसको कण्ठस्थ रखना पड़ता था और बाद में वाणी द्वारा ही उसको दूसरे तक पहुंचाया जा सकता था। अधिक से अधिक भोजपत्र उपलब्ध थे। जिन पर रचनाएं लिपिबद्ध की जाती थीं, परन्तु आज के युग में छापेखाने का आविष्कार होने के बाद हमें ऋषि-मुनियों, दार्शनिकों, चिन्तकों और साहित्यकारों के विचार मुद्रित रूप में उपलब्ध हैं। अत: हम उनका अध्ययन करके अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं।

फ्रांसिस बेकन के अनुसार पुस्तकें मनुष्य की सर्वोत्तम सहयोगी हैं। वे हमें शिक्षित करने के साथ-साथ हमारा मनोरंजन भी करती हैं। पुस्तकें समय का सदुपयोग करने का सबसे अच्छा माध्यम है। वे हमसे किसी चीज की मांग नहीं करतीं, केवल देना ही इनका धर्म है। साधारणत: पुस्तकों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी में वे पुस्तकें आती हैं, जो हमारी पढ़ाई से संबंधित हैं। इसके अंतर्गत विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय और प्रतियोगी परीक्षाओं से संबधित पुस्तकें आती हैं। इन पुस्तकों का अध्ययन हम परीक्षा में सफल होने के लिए करते हैं। इन पुस्तकों से हमारा मनोरंजन नहीं होता तथा इनका अध्ययन हम खाली समय में नहीं करते हैं। इन पुस्तकों का अध्ययन हमें नियमित रूप से करना पड़ता है।

दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत आने वाली पुस्तकें मनोरंजन प्रधान होती हैं। जो व्यक्ति की रुचि पर आधारित होती हैं। छोटे बच्चों को रंगीन चित्रों वाली सचित्र कथाएं या वैज्ञानिक कल्पनाओं पर आधारित पुस्तकें पसन्द आती हैं। जैसे ही वह बड़ा होता है उसे प्रेम तथा जासूसी और रहस्यभावना से भरी किताबें पसंद आती हैं।

अच्छी पुस्तकें इस लोक का जीवन सुधारने और परलोक का जीवन संवारने की शिक्षा देती हैं। वे साहस और धैर्य प्रदान करती हैं। अन्धकार में हमारा मार्गदर्शन करती हैं। अच्छा साहित्य हमें अमृत की तरह प्राणशक्ति देता है। अच्छी पुस्तकों के पढ़ने से जो आनन्द मिलता है वह ब्रह्मानन्द के ही समान होता है।

वेद, शास्त्र, रामायण, भागवत गीता आदि ग्रन्थ हमारे जीवन की अमूल्य निधि हैं। सृष्टि के आदिकाल से आज तक ये पुस्तकें हमारा मार्गदर्शन कर रही हैं और हमारी सांस्कृतिक विरासत को कायम रखे हुए हैं। अच्छी पुस्तकें हमारे लिए मित्र और सहयोगी की भूमिका निभाती हैं। उम्र के बढ़ने के साथ-साथ रुचियों में भी परिवर्तन होता है।

इस प्रकार अच्छी पुस्तकें न सिर्फ मनुष्य की मित्र हैं, बल्कि मार्गदर्शक भी हैं। वृद्धावस्था में मनुष्य धर्म और अध्यात्म से संबंधित पुस्तकों का अध्ययन करता है। वृद्धावस्था में अपने प्रिय लेखकों की पुस्तकों को पढ़ना, निश्चय ही लाभदायक होता है। भर्तृहरि ने लिखा है कि बुद्धिमान् लोग वे हैं जो अपने खाली समय को अध्ययन और शास्त्रचर्चा में व्यतीत करते हैं। हमें केवल अच्छी पुस्तकों का अध्ययन ही नहीं करना चाहिए, बल्कि अध्ययन के पश्चात् मनन भी करना चाहिए। अपितु उनका मनन तथा चिन्तन भी करना चाहिए क्योंकि अध्ययन, चिन्तन और मनन में गहरा संबंध है। अध्ययन के बिना चिन्तन परिष्कृत नहीं होता और चिन्तन के बिना अध्ययन का मूल्य नहीं। अच्छी पुस्तकें हमारी ऐसी मित्र हैं जो हमें प्रत्येक स्थान और प्रत्येक काल में सहायक होती हैं। यही कारण है कि अनेक लोग भगवद्गीता, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, गुरुवाणी, कुरान आदि पढ़ते रहते हैं तथा धार्मिक गुटकों को अपने पास रखते हैं और समय मिलने पर उनका पाठ करते रहते हैं।

अच्छी पुस्तकें चरित्र निर्माण का सर्वोत्तम साधन हैं। उत्तम विचारों से युक्त पुस्तकों के प्रचार और प्रसार से राष्ट्र के युवा कर्णधारों को नई दिशा दी जा सकती है। देश की एकता और अखंडता का पाठ पढ़ाया जा सकता है, और एक सबल राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है। पुस्तकें आत्मा को विचारों का खाना खिलाती हैं, चिन्तन के चश्मों का पानी पिलाकर उनकी प्यास बुझाती हैं। जैसा कि महान् यहूदी विद्वान् जैडा इलेम तिब्बन ने कहा है- 'पुस्तकों से भरी आलमारियां तुम्हारे बगीचे हैं, सरगाहें हैं। वहां लगे फल तोड़ो, वहां खिले गुलाब चुनो वहां से पराग और लोबान बटोरो।'

सभी जमाने में सभी पीढ़ियों के सभी व्यक्तियों ने यही पाया है कि अच्छी पुस्तकें विवेकशील और सदाचार बनकर आनन्द का मार्ग प्रशस्त करती हैं। आधुनिक समाज में इनकी महत्ता और भी बढ़ गयी है।

भौतिकता के इस युग में अच्छी पुस्तकें ही संघर्षशील मनुष्य का मार्गदर्शन करती हैं,

प्रेरणा देती हैं, आत्मविश्वास जागृत करती हैं। ऐसी पुस्तकों का महत्व हमेशा रहेगा। अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए धन-सम्पत्ति जो भी छोड़ें वे निरर्थक होंगी इसलिए जरूरत है घर-घर में एक छोटा-सा पुस्तकालय हो जहां अच्छी-अच्छी पुस्तकें, समय-समय पर सुख-दुख को बांट सकें। घर के सूनेपन को दूर करके उदास क्षणों में मन को खुशियां देंगी। गांव में घर-घर में धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रंथ मिलते हैं, क्योंकि उन्हें पढ़ने से आत्मिक शान्ति मिलती है। आज के व्यस्त एवं तनावपूर्ण माहौल में विभिन्न विषयों की पुस्तकों की आवश्यकता है जो मनोरंजन ही नहीं सामयिक समस्याओं का समाधान भी कर सकें।

दुनिया में बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ लाने में भी पुस्तकों की जबरदस्त भूमिका रही है। स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रेमचन्द, पन्त, दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा आदि साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से सुप्त भारतीय मानसिकता को झकझोरने का सफल प्रयास किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'गीतांजलि' की रचना कर प्रथम एशियाई नोबेल सम्मान प्राप्त किया और भारतीय साहित्य को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित किया। रामभक्त कवि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' जैसे भक्ति साहित्य की रचना कर सम्पूर्ण हिन्दी-समाज को एक नई दिशा दी। विष्णुशर्मा की पुस्तक पंचतंत्र में ऐसी कालजयी कहानियां हैं जिसका दूसरा उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता।

कोई भी साहित्य समकालीन समाज का प्रतिनिधित्व करता है और यही कारण है कि मानव सभ्यता के प्रत्यैक कालखंड की जानकारी के लिए उस कालखंड का साहित्य सर्वाधिक विश्वसनीय होता है। वेद, उपनिषद्, पुराण, धर्मशास्त्र, गीता आदि प्राचीन साहित्य ही भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का वह खम्बा है जिस पर भारतीयता का विशाल भवन स्थिर है। भारत के महान् कूटनीतिज्ञ चाणक्य की पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में राजनैतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जिसका आज भी महत्त्व है। निश्चय ही दुनिया में विभिन्न धर्मों के प्रचार-प्रसार में धर्मग्रन्थों की उल्लेखनीय भूमिका रही है। यही कारण है कि विभिन्न धर्मों के अपने-अपने प्रमाणित ग्रंथ हैं। अत: सत्साहित्य तथा अच्छी पुस्तकें ही मानव-समाज के सच्चे पंथ प्रदर्शक की हैं।

-२८६, स्नेहकुंज कॉलोनी, जौनपुर दक्षिण,कोटद्वार
(गढवाल) उत्तराखण्ड

दीप जलाओ

– श्री कृष्णचन्द्र टवाणी

जगमग करती दिवाली आई, स्नेह-दीप जलाओ भाई

आज नहीं है वह अंधियारी छिटकी जगमग जग उजियारी
नव सौरभ की अभिनव क्यारी महका रही घर आंगन बाड़ी
नव उमंगो की बहारें आईं स्नेह दीप जलाओ भाई

नेह नया भर दीप जलाना ज्ञान ज्योति से अज्ञान मिटाना
तम तामस को दूर भगाना सुंदर साज से देश सजाना
कहने आज माँ लक्ष्मी आई स्नेह दीप जलाओ भाई

आओ हे! मानव के शिशुगण दिव्य ज्योति से अंतर भर लो
दीप शिखा के निर्मल प्रकाश से उज्ज्वलित आज जीवन को कर लो
कलुष भावना सब दूर हटाकर जीवन सफल बनाओ भाई

**प्रधान सम्पादक, अध्यात्म अमृत, ज्ञान मन्दिर, सिटी रोड़,
मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) मोबाईल : ०९२५२९८८२२१**

जानकीहरण महाकाव्य में प्राकृतिक बिम्ब-विधान

–श्री करण कुमार

कवि का प्रकृति के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। अपने जीवन को प्रकृति-जीवन का ही अंग समझता है। उसकी सौन्दर्य-परिकल्पना का आधार भी प्रकृति ही है। अतः वह प्रकृति से निरपेक्ष मानव की कल्पना कर ही नहीं सकता। क्योंकि वह एक-दूसरे को बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव में देखता है। भारतीय चिन्तनधारा के अन्तर्गत दोनों का संचालन एक ही प्रकार से होता है। अतः दोनों के बीच आन्तरिक सम्बन्धों की परिकल्पना रहती है। मानव और प्रकृति के बीच पाए जाने वाले साहचर्य की अभिव्यक्ति भारतीय कवियों का प्रिय विषय रहा है।

कवि की दृष्टि से सूक्ष्म या रहस्य छिपा नहीं रहता। वह विश्व के बाह्य प्रपंच को ही नहीं, अपितु अंतरंग जीवन को भी साक्षात्कार करके प्रस्तुत करता है। एक जड़पदार्थ मिट्टी का ढ़ेला भी उसकी निगाह में चढ़ जाय तो उसे भी चैतन्य के निरन्तर स्पन्दन से प्रस्फुटित जीव के रूप में उपस्थित कर देता है और चेतन को भी जड़मात्र कर छोड़ देता है।[१]

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के लक्षणों में यह स्पष्ट किया है कि किसी भी महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन-उपवन, समुद्र आदि का यथास्थान किंवा यथासंभव साङ्गोपांग चित्रण होना आवश्यक है।[२]

इसी परम्परा में जब जानकीहरण महाकाव्य का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट है कि महाकवि कुमारदास प्रकृति के कवि हैं और प्रकृतिवर्णन में वे पूरी तरह तन्मय परिलक्षित दिखाई देते हैं। महाकवि प्रकृति के विविध उपादानों का प्रयोग अपनी कृतियों में बिम्ब-विधान-हेतु करते हैं। प्रकृति का सौन्दर्य-भण्डार अक्षय है। युग-युगों से कवि इस कोष के उपादानों का प्रयोग करते आए हैं। परन्तु उनका रूप नित्य नवीन दृष्टिगत होता है। नदी, सरोवर, झरने, सागर, चन्द्रिका, पुष्प, वृक्ष, पवन, नक्षत्र, आकाश, धरती, संध्या, रात्रि, उषा आदि के बिम्ब काव्यकृतियों में असंख्य मिलते हैं। इन बिम्बों के भी जलीय,

१. ध्वन्यालोक-उद्योत-३

२. साहित्यदर्पण, ६/३२२

आकाशीय, वन्य, पर्वतीय, ऋतु, पृथ्वीय एवं पशु-पक्षी सम्बन्धी अनेक भेदोपभेद किये जा सकते हैं। जैसे प्रातःकाल चारणों ने कुछ इस प्रकार के मङ्गलाचरणों से राजा को जगाया। एक स्थान पर कवि प्रातःकालीन संध्या का वर्णन प्रस्तुत करता हुआ कह रहा है कि-

जहिहि शयनमुद्गमस्य कालः
समुपनत्यनुरक्तमण्डलस्य।
भुवनशिरसि कीर्णपादधाम्नो भवत इव
क्षततामसस्य भानोः ।।[३]

कवि ने इसमें प्रातःकालीन उदय होते हुए सूर्य का वर्णन किया है कि जब सूर्य प्रातःकाल उदय होता है उस समय उसका रंग लाल होता है और वह सम्पूर्ण अन्धकार को चीरता हुआ अपनी प्रकाशमय किरणों को प्रस्फुटित करता है। जिसकी किरणों के प्रकाश से सम्पूर्ण पृथ्वी पुनः चलायमान हो जाती है। उसी प्रकार एक राजा का जीवन होता है वह अपनी प्रजा के लिए सूर्य की भान्ति होता है।

सूर्यास्त का वर्णन- जानकीहरण में सूर्यास्त का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत किया गया है, सूर्यास्त के वर्णन का पद्य यहां पर उदाहरणार्थ प्रस्तुत है:-

द्रुतमपसरतैति भानुरस्तं सरसिरुहेषु
दलार्गलाः पतन्ति।
भ्रमरकुलमिति ब्रुवन्निवालिः
क्वणितकलं विचचार दीर्घिकायम्।।
सति दिवसपरिक्षयस्य योगे निपतित-
सद्वयसस्तमोऽभिभूताः।
विनमतिचलमस्तका बभूवुः समुपहता
जरसेव वृक्षगुल्माः।।[४]

यह पद्य उनके प्रकृति-प्रेम तथा अनूठी कल्पना की अभिव्यक्ति में सर्वथा समर्थ है। इसमें अनूठी कल्पनाओं ने प्रकृति के उपादानों में मानवीय कार्य-व्यापारों के मार्मिक दर्शन कराये हैं। 'जल्दी निकल भागो सूर्यास्त हो गया। कमलों पर उनकी पंखुड़ी रूपी अर्गला बन्द हो रही है। यह चेतावनी भ्रमरसमूह को सुनाता-सा भृंग इधर-उधर चक्कर लगाने लगा। दिन के अवसान पर वृक्षों के कुंजों ने जैसे बुढ़ापे के कारण अपने हिलते हुए मस्तकों को झुका दिया और अन्धकार से आक्रान्त पक्षीगण उन पर आ बैठे।

जलीय-बिम्ब- जानकीहरण में जलीय बिम्ब का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत किया गया है। जल एक तरल पदार्थ है। मानव मन की तरलता की समानता इससे भी की जा सकती है। प्रकृति के उपादानों का मानवीकरण करने में कुमारदास दक्ष है, देखिए वे तो सरोवर को भी कामी पुरुष बना देते हैं-

कमलों से भरा हुआ एक सरोवर, जांघ तक जल में घुसी हुई युवतियों के नितम्बभाग को, लहरियों की उंगलियों से कामी पुरुष की तरह शब्द करता हुआ, धीरे-धीरे थपथपा-सा

३. जानकीहरण, ३/७७

४. जानकीहरण, १६/६-७

रहा है।[५]

एक स्थान पर कवि ने अपनी कल्पना के द्वारा जलीय बिम्ब का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है कि सरोवर कमलों से भरा हुआ है। क्षत्रिय कुल सर्वश्रेष्ठ राजा दशरथ के वक्षस्थल पर कमलों से बनी एक रेखा बन गई थी वह इस प्रकार शोभायमान हो रही थी कि वह दशरथ के लावण्य को बढ़ाने वाली सुन्दर सोने की डोरी हो।[६]

इसी प्रसंग में कवि एक स्थान पर वर्णन करता है कि कमलों का परागजाल उनकी (युवतियों की) क्रीड़ा से आलोडित होने के कारण बहुत क्षुब्ध हो गया। नव कमलों से भरा हुआ उस सरोवर का जल ऐसा चमकने लगा जैसे वह उनकी (युवतियों की) कंचुकी से निचोड़ कर निकाला गया हो।[७]

सागरीय बिम्ब- सागर अपने विस्तार, गहराई, अथाह जलराशि के उभार, ज्वारभाटा आदि से आन्दोलित होते रहते हैं। इन जलनिधि बिम्बों में बहुधा उच्छलतरंगायित्व जीवन का रूप उभरता है। कहीं-कहीं उदात्त एवं गम्भीर रूप भी दृष्टिगत होता है। सागर के उदर में दौड़ते-दौड़ते टकराते जलचरों की भान्ति काव्यानुभूतियां टकराती प्रतीत होती हैं।

जानकीहरण महाकाव्य के १४वें सर्ग में कवि ने समुद्र का चमत्कारिक चित्रण प्रस्तुत किया है। जिसमें कवि की कल्पना-प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है। कतिपय निदर्शन यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं। सेतुनिर्माण हेतु वानरयूथ द्वारा पर्वत जब समुद्र में फेंका गया तो समुद्र से सम-सम की आवाज आने लगी।[८]

इसके उपरान्त पर्वत से प्रताड़ित एक विशाल जलराशि सूर्य से टकराती हुई समुद्र के ऊपर की ओर उठी। उसने जल के भीतर के मीन कुल को आकुल कर दिया और सम् सम् की घोर ध्वनि की। कवि अपनी कल्पनाओं के द्वारा एक ऐसा चित्र प्रस्तुत कर रहा है कि समुद्र की विशाल जलराशि पर्वत द्वारा प्रताड़ित की गई अर्थात् धिक्कारी गई, सूर्य से टकराती हुई, ऐसी प्रतीत हो रही थी कि वह समुद्र से पार जाना चाहती हो। इसकी तेज तरंगों ने समुद्र में उपस्थित मच्छलियों के समूह को व्याकुल कर दिया और वह तरंगें बाहर की ओर अग्रसर होती हुई सम्-सम् की घोर ध्वनियों का गान कर रहीं थीं।

-शोधच्छात्र, वी०वी०बी०आई०एस०एण्ड आई०एस०
(पं०वि०), साधु आश्रम, होशियारपुर।

५. जानकीहरण, ३/३४
६. वही, ३/३३
७. वही, ३/३६
८. वही, १४/२६

रामलुभाया कृत पंजाबी रामायण का वैशिष्ट्य

– श्री अजय शर्मा

महर्षि वाल्मीकि लौकिक संस्कृत-साहित्य के प्रकाशमान स्तम्भ हैं। संस्कृत साहित्य में छन्दोबद्ध कविता का प्रादुर्भाव वाल्मीकि से ही हुआ। अतः रामायण 'आदिकाव्य' कहा जाता है। भारत का स्वरूप बहुभाषा-भाषी रहा है। रामायण को आधार बनाकर भारतीय भाषाओं में स्वतन्त्ररूप से कई रामायण लिखे गए हैं। इसी परम्परा में 'पंजाबी रामायण' भी एक रामायण है जो कवि रामलुभाया आनन्द दिलशाद ने लिखी है-

लिख्या हाल रामायण दा मैं सारा,
विच नझन पंजाबी झबान प्यारे। पं.रा.७/५५२

कवि दिलशाद पश्चिमी पंजाब के शाहपुर जिले के भेरा नामक स्थान से सम्बन्धित थे। आपका जन्म १८६८ ई० में हुआ और मृत्यु १९४६ ई० में हुई।

यद्यपि पंजाबी रामायण लहंदा (पंजाबी) में लिखी गई है, किन्तु इसमें फारसी शब्दों की बहुतायत है। इसमें ७ काण्ड हैं। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के स्थान पर आदिकाण्ड है तथा शेष काण्डों के नाम व क्रम वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हैं।

आदिकाण्ड का प्रारम्भ ईश्वरप्रार्थना और कविपरिचय से किया गया है। इसके बाद दशरथ के राज्य का वर्णन, पुत्र-प्राप्ति के लिए यज्ञ, विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण को यज्ञरक्षा के लिए ले जाया जाना, ताटकाहनन, सीता-स्वयंवर, राम-परशुराम का संवाद आदि इसमें हैं।

अयोध्या काण्ड में श्रीराम के राज्यतिलक की तैयारी, कैकेयी द्वारा वरयाचना से राम को वनवास और भरत को राज्य, दशरथ की करुणाजनक स्थिति और मृत्यु तथा भरत का राम से मिलकर अयोध्या में लौटना वर्णित है।

अरण्यकाण्ड में राम पंचवटी में जाते हैं। वहां शूर्पणखा की घटना के बाद खर-दूषण का वध, सीता का अपहरण तथा सीता के वियोग में राम की शोक स्थिति चर्चित है।

किष्किन्धाकाण्ड में राम का हनुमान् से मिलना, उनकी सुग्रीव से मैत्री, बालीवध तथा सुग्रीव की राज्यप्राप्ति के बाद हनुमान् का लंका के लिए प्रस्थान का वर्णन है।

सुन्दरकाण्ड में हनुमान् सीता से मिलते हैं

तथा लंका का दहन करते हैं। विभीषण से मिलने के बाद लंका जाने के लिए सेतु का निर्माण इस काण्ड में वर्णित है।

युद्धकाण्ड में कुम्भकर्ण, मेघनाद वध तथा लक्ष्मण की मूर्च्छा के बाद श्रीराम रावण का वध कर देते हैं। श्रीराम विभीषण को लंका का राजा बनाकर अयोध्या में वापिस आ जाते हैं और राम का राज्याभिषेक वर्णित है।

उत्तरकाण्ड में सीता का वनवास, वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश की उत्पत्ति तथा अश्वमेध यज्ञ के बाद सीता का भूमि में प्रवेश और राम का स्वर्गारोहण विवेचित है।

इस प्रकार पंजाबी रामायण विषय-वस्तु, संवाद, घटनाक्रम और वर्णन की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है। कवि का सम्बन्ध पंजाब से होने के कारण पंजाबी रामायण में पंजाबी संस्कृति और सभ्यता की झलक दृष्टिगोचर होती है। वाल्मीकि रामायण के समान ही कवि ने श्रीराम के चरित्र को प्रस्तुत किया है। श्रीराम पितृ-आज्ञा को सर्वोपरि मानते हैं। वह कभी भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकते हैं-

उठो पिता जी फिकर नूँ दूर करके,
लई सुण सारी हुण गल्ल मैं ताँ।
दे देओ राज एह भरथ ताईं,
बैठा जंगल दा राज हां मल्ल मैं ताँ।।

पंजाबी रामा.२/१४२

वाल्मीकि रामायण के समान ही पंजाबी रामायण में भी श्रीराम सम्पूर्ण मानवता के लिए एक आदर्श हैं। श्रीराम को एक आदर्श एवं आज्ञाकारी पुत्र के रूप में चित्रित किया गया है। कवि की दृष्टि में एक आदर्श और अच्छा पुत्र वही है जो सदैव अपने माता-पिता की सेवा में निरत रहता है-

करदा टैहल खिदमत माई-बाप दी जो,
समझो ओही पूत सपूत होंदा। वहीं २/१२४-१२५

कवि ने पंजाबी रामायण में आदर्श परिवार की झांकी को प्रस्तुत किया है। माता-पिता, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई तथा सास-वधू एवं परिवार के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे होने चाहिएं ? इस सम्बन्ध में कवि के विचार विशेष महत्त्व रखते हैं। जब माता कौसल्या वन में श्रीराम के साथ जाना चाहती है तब श्रीराम माता को अयोध्या में ही रहकर अपने पातिव्रत्य धर्म का पालन करने के लिए कहते हैं। पतिव्रत धर्म के सामने अन्य सभी धार्मिक कार्य भी निष्फल कहे गए हैं- इसी ओर संकेत करता हुआ कवि लिख रहा है कि-

पतिबरत जेहॅया नहिं धरम कोई,
तप ते जप सारे निष्फल माताँ।
इसे धरम डराए नीं लोक तिन्ने,
जावे झमीन आसमान भी हल ताँ।।

वही. २/१७३

यदि कोई व्यक्ति अपने पारिवारिक

सम्बन्धों का निर्वाह करते समय मर्यादा का उल्लंघन करता है तो वह पापी एवं मृत्युदण्ड का अधिकारी है। किष्किन्धाकाण्ड में बाली श्रीराम से कहता है कि उन्होंने अधर्म किया है। इस का उत्तर देते हुए श्रीराम कहते हैं कि छोटे भाई की पत्नी तो तुम्हारी बेटी के समान थी। तुमने मर्यादा का उल्लंघन किया है क्योंकि-

छोटे भाई दी इस्त्री नाल जो तूँ,
रंग रलिआँ लग्गा मणान प्यारे।
ओ भरजाई छोटी बेटी आही तेरी,
लई पाप उसे तेरी जान प्यारे।। पं.रा.४/११५

पंजाबी रामायण में संक्षेप में राजनीति-विषयक सिद्धान्तों का भी उल्लेख मिलता है। रावण का नाना माल्यवान् रावण को समझाते हुए कहता है कि जो व्यक्ति धर्म का परित्याग कर अधर्म करता है, उसकी पराजय निश्चित होती है-

जिन्हाँ धर्म नूँ छोड़ अधर्म कीता,
खांदे ओ झरूर ख़ता साईं। वही, ६/४७

इसमें कवि ने पंजाबी सभ्यता, पंजाब में प्रचलित मिठाईयां, पुष्पों तथा फलों को भी वर्णित किया है। आदिकाण्ड में सभी भाईयों के विवाह पर कवि ने पंजाब में प्रचलित मिठाईयों का वर्णन इस प्रकार किया है-

पिस्ता कन्दी पतीसा ते सोन-हलवा,
फिरनी खीर भी पए बरतान साईं।। पं.रा.१/३७३

सुन्दरकाण्ड में लंका की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने फलों तथा फूलों का भी उल्लेख किया है-

अंब, अनार, आड़ू अते खुरमानी,
सुर्ख सेब सोहने खुरासान साईं। पं.रा.५/१६

फूलों का वर्णन-

चम्बा मोतिया किधरे गुलाब खिड़ेऑ,
रेहा खिड़ किधरे झाहफरान साईं। पं.रा.५/१९

इससे प्रतीत होता है कि कवि दिलशाद का प्रकृति के साथ कितना अधिक प्रेम है।

अतः पंजाबी रामायण में एक आदर्श परिवार, जिसमें सभी पात्र आदर्श का चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। इसमें कवि ने उस समय की सामाजिक स्थिति का भी वर्णन किया है। कवि द्वारा राजनैतिक प्रसंगों का वर्णन, प्रकृति के प्रतिप्रेम इत्यादि का उल्लेख बहुत ही सराहनीय है। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण को आधार बनाकर लिखा गया यह ग्रन्थ भी विशेष महत्त्व रखता है।

शोधछात्र, संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

कबीर की सत्यान्वेषी वाणी

– श्री सुरिन्द्र कुमार

कवि केवल विचारक ही नहीं अपितु समाज-सुधारक भी होता है। सन्त कबीर भी उन्हीं कवियों में से है जिन्होंने समाज की बुराईयों पर केवल विचार ही नहीं बल्कि उन बुराईयों को दूर करने का कार्य भी किया। कबीरदास ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक बिन्दु को छूते हुए अपनी काव्य-रचना द्वारा हिन्दीसाहित्य में जो पहचान बनाई है, वह अद्वितीय है।

संत कबीर एक प्रगतिशील समाज-सुधारक थे। उनके युग में हिन्दुओं तथा मुसलमानों में धार्मिक पाखण्ड एवं आडम्बर अपनी चरम सीमा पर थे। उन्होंने समाज के कल्याण की भावना से इसका विरोध किया। उन्होंने लोगों को सामाजिक बुराईयों से बाहर निकालने का प्रयत्न किया। कबीर स्वयं कहते हैं-

मसि कागद छुओ नहीं, कलम गहि नहीं हाथ।।

उन्होंने अपनी रचनाएं स्वयं नहीं बल्कि उनके शिष्यों ने लिखी हैं। वे तो **-कहै कबीर सुनो भई सन्तो**-कहकर ही अपने विचार लोगों तक पहुंचाते थे। उनकी मृत्यु के बाद शिष्यों द्वारा उनके पदों का संकलन किया गया। कबीर-पंथियों के अनुसार इसका नाम 'बीजक' है।

संत कबीर ने जब जन-कल्याण के लिए अपने उपदेशों का प्रचार करना आरम्भ किया तो उन्होंने देखा कि समाज में लोग दो धर्मों हिन्दु तथा मुसलमान में बंटा हुआ है। लोगों ने ईश्वर को 'राम-रहीम' तथा 'कृष्ण-करीम' आदि में बांटा हुआ था। संत कबीर ने लोगों को बताया कि परमात्मा एक है। उन्होंने लोगों को बताया कि ईश्वर ने लोगों का उद्धार करने के लिए समय-समय पर अनेकों अवतार लिये। संत कबीर कहते हैं-

एक बूँद एकै मल मूतक,
एक चाम एक गूदा।
एक जोति थै सब उत्पना,
कौन बामन कौन सूदा।।

कबीरग्रंथावली में ऐसे अनेक पद हैं जिसमें उन्होंने समाज के तथाकथित पण्डितों को मानवतावादी उपदेश दिया। वे कहते हैं कि वेद पुराण को पढ़ने से क्या लाभ, यदि उनका महत्त्व ही न समझा जाए ?

संत कबीर ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों के द्वारा प्रचलित थोथे आडम्बरों का विरोध किया। उनका कहना था कि हिन्दु और मुसलमान दोनों के ही धर्माचार्यों की करनी और कथनी में अन्तर है। संत कबीर एक निर्गुण काव्यधारा के कवि थे। उन्होंने हिन्दु-धर्म में प्रचलित बाल विवाह, सती प्रथा आदि का जोरदार शब्दों से खण्डन किया। संत कबीर ने हिन्दु तथा मुसलमान लोगों को उचित मार्ग दर्शन करवाने का प्रयास किया और काफी हद तक वे इसमें सफल भी हुए। इसके अतिरिक्त उन्होंने लोगों को अन्ध-विश्वासों, खोखले रीति-रिवाजों पर विश्वास न रखने तथा इनका त्याग करने का सन्देश दिया।

हिन्दु धर्म में अवतारवाद का बहुत प्रचार था। लोग इस में बहुत विश्वास करते थे। परन्तु संत कबीर ने अवतारवाद का विरोध करते हुए कहा-

अक्षय पुरख इक पेड़ है, बाकी निरंजन डार।
त्रिदेव शाखा भए, पात भए संसार।।

अवतारवाद के साथ-साथ हिन्दुधर्म में स्त्री के प्रति भी लोगों की भावना बड़ी विचित्र थी। वे स्त्री को अधिक स्वतन्त्रता नहीं देते थे। वे उसे घर में ही रखते थे। कबीर नारी के लिए कहते हैं-

पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
पतिव्रता रूप पर, वारौ कोटि सरूप।।

उन्होंने समाज में प्रचलित जाति-पाति के भेदभाव को खत्म करने का प्रयास किया क्योंकि उस समय समाज बहुत से ऊँच-नीच आदि के वर्गों में बंट चुका था। इसी को खत्म करने के लिए वे कहते हैं-

जाति पाति पूछै नहिं कोय,
हरि को भजै सो हरि का होय।।

वे केवल हर पल परमात्मा के नाम से जुड़ा रहने का सन्देश दिया करते थे। उन्होंने लोगों को वश में करने वाली माया को खत्म करके प्रभुभक्ति में लीन होने का सन्देश दिया। संत कबीर माया के सम्बन्ध में कहते हैं-

माया महाठगिनी हम जानी।।

संत कबीर ने ईश्वर की प्राप्ति के लिए सबसे बड़ा सहयोगी गुरु को बताया है। उनके अनुसार यदि हम अपने जीवन में गुरु को धारण नहीं करते तो हमें ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। चाहे हम जितना भी प्रयास क्यों न करें। इसीलिए वह विरोध करते हुए कहते हैं-

माला फिरत जुग फिरा, फिरा न मनका फेर।
कर का मनका डार दे, मनका मनका फेर।।

श्रीमद्भागवतकथा में भी कहा गया है कि यदि ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो उसमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका गुरु की है। ईश्वर साध्य है, गुरु एक साधन है। गुरु मनुष्य की सोई हुई आत्मा को जगाकर प्रेम तथा भक्ति मार्ग का पथप्रदर्शन करता है।

संत कबीर ने क्रोध त्याग, क्षमा, सत्यता, दया, परोपकार, सदाचार, अहिंसा आदि अनेक नैतिक उपदेश अपनी वाणियों के माध्यम से मानव को दिया है। उसकी दृष्टि में नैतिक भावना ही आंतरिक और मानसिक परिष्कार की शिक्षा देती है जिससे समाज में सद्भावना का विचार उत्पन्न होता है और मानव समुदाय के बीच एकता की भावना पनपने लगती है। संत कबीर ने लोगों को गलत कार्य अर्थात् नशीले पदार्थों के सेवन करने का भी विरोध किया। वे कहते हैं कि संसार में नशे की लत एक ऐसी बीमारी है जो जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती है। व्यक्ति नशे की हालत में अपनी सामान्य-स्थिति से गिर कर अपने होश खो देता है। उचित-अनुचित का भी उसे ध्यान नहीं रहता। वे कहते हैं कि जो लोग बीड़ी-सिगरेट आदि धूम्रपान करते हैं उनका संग त्याग देना चाहिए। सभी व्यसनों अर्थात् भांग, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, शराब को छोड़कर जब निर्गुण राम का भक्तिरूपी नशा ग्रहण किया जाता है तब सब अज्ञान दूर हो जाता है और भक्ति-सुख के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता। भगवान् राम का प्रेमरूपी प्याला भक्तिभाव से जब हृदय से लगा लिया जाता है तो रोम-रोम में राम रमन करते हैं। इस प्रकार वे सत्गुरु की महिमा का गुणगान करते हुए कहते हैं-

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन उघाड़िया, अनंत दिखावणहार ।।

इसके अतिरिक्त संत कबीर जी परमात्मा की महिमा का गुणगान करते हुए कहते हैं-

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पायं।
बलिहारी गुरु आपने, हरि को दिया बताय।।

इस तरह से उन्होंने अपनी साखियों में सत्गुरु के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। वह अज्ञान का परदा हटाकर सत्य से साक्षात्कार कराता है। जिससे हमारा मानव-जीवन पूर्ण रूप से सफल बन जाता है।

वास्तव में संत कबीर एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जो तन-मन, आचार-विचार, कथनी-करनी से सर्वथा निर्दोष हो तथा उस समाज के प्रत्येक मानव का कर्म परमात्मा को समर्पित हो, जिससे समस्त द्वेष और हिंसा समाप्त हो सके। अपने इसी उद्देश्य को सफल करने के लिए उन्होंने सामाजिक कुरीतियों को दूर कर जनमानस को सरल जीवन, सत्याचरण, पारस्परिक एकता आदि की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया। उन के इन्हीं प्रयासों के आधार पर उन्हें न केवल मानवीय एकता का विधायक बल्कि एक उच्च- कोटि का समाज-सुधारक भी कहा जाता है।

शोधछात्र, हिन्दी विभाग, डी०ए०वी० कॉलेज, होशियारपुर।

भक्ति एवं उपासना शब्द की एकार्थकता

– सुश्री निधि चौधरी

मानव चिरकाल से अनादि सत्ता (ब्रह्म) में विश्वास करता आया है। जिस प्रकार मानव-जीवन से सम्बद्ध क्षुधा हेतु उसके तृप्तिदायक पदार्थों की सत्ता सिद्ध होती है, उसी प्रकार मनुष्य के चित्त में विद्यमान भक्ति-भाव के द्वारा प्रमाणित होता है कि लोक में कोई उपास्य है, जो इस सम्पूर्ण चराचर जगत् की सर्जना, रक्षा एवं विनाश करता है। उपास्य-उपासक का भावात्मक-सम्बन्ध ही 'भक्ति' है। यह भक्ति-श्रद्धा, विश्वास एवं प्रेम-आप्लावित भक्त-हृदय में विद्यमान रहती है। साधक का चित्त जब कामनारहित होकर सांसारिक विषयों के प्रति अनासक्त हो जाता है, तब उस निर्मल हृदय में भक्ति प्रादुर्भूत होती है, जिसके फलस्वरूप सांसारिक-विषयवासना से उत्पन्न कामादि विकार स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं।[१] 'भक्ति' उपासना के द्वारा ही स्थापित की जाती है, अतः भक्ति एवं उपासना शब्द समानार्थक हैं। शास्त्रों में विभिन्न-स्थलों पर इन्हें पर्याय रूप में प्रयुक्त किया गया है। जिसका विवेचन निम्न प्रकार से है-

भक्ति- शब्दशास्त्र की दृष्टि से 'भजनं रसनं भक्तिः', 'भज्यतेऽनया भक्तिः', 'भजन्त्यनयेति भक्तिर्वेति'- भाव तथा करण अर्थ में 'भज् सेवायाम्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय होने पर 'भक्ति' शब्द निष्पन्न होता है।[२] भक्ति-शास्त्र में भक्तों के द्वारा 'भगवत्-प्रीति अनुकूल व्यापार' ही भक्ति है, यद्यपि शास्त्रों में 'भक्ति' शब्द सेवार्थ, आराधनार्थ, उपासनार्थ, चित्तवृत्तिभेदार्थ, विभागार्थ, उपचारार्थ, अवयवार्थ, श्रद्धार्थ आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है।[३]

उपासना- 'उपासना' शब्द[४] 'उप' उपसर्गपूर्वक 'आस् उपवेशने' धातु से भाव-अर्थ में 'व्यासश्रन्थो युच्' सूत्र से युच् प्रत्यय, 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय होने पर सिद्ध होता है। शुश्रूषा, परिचर्या, आराधना, सेवा, भक्ति आदि अर्थों में भी 'उपासना' शब्द

१. नारदभक्तिसूत्र, ७
२. अष्टाध्यायी.
३. वाचस्पत्यम्, षष्ठ भाग, पृ.सं. ४६१८
४. अष्टाध्यायी, पाणिनि, ३/३/१०७

प्रयुक्त होता है। भक्ति-शास्त्र के अनुसार विधिपूर्वक उपास्यविषयक दीर्घकालिक चित्त की एकाग्रपूर्वक अतिशय प्रीति ही उपासना है।[५] अमरकोश[६] में पूजा, भक्ति, नमस्क्रिया, ध्यान, अनुष्ठान, उपासना आदि शब्दों को समानार्थक प्रतिपादित किया है। इस प्रकार भक्ति तथा उपासना शब्दों में स्वरूप भेद होने पर भी अर्थ-भेद सिद्ध नहीं होता।

भक्ति एवं उपासना शब्दों की एकार्थकता- विभिन्न शास्त्रों में उपासना, संराधन, भक्ति, आराधना, सेवा आदि को एकार्थ-बोधक ही स्वीकार किया गया है। वेदमन्त्रों में भक्ति को उपासना शब्द से प्रतिपादित किया है। वैदिक भक्ति के तीन सोपान हैं- स्तुति, प्रार्थना और उपासना। भक्ति के ये त्रिविध अंग, वेदत्रयी द्वारा प्रतिपादित ज्ञान, कर्म एवं उपासना के त्रिमार्ग का रूप धारण कर लेते हैं।[७] अद्वैत-वेदान्तियों के अनुसार उपासना से ही मुक्ति प्राप्त होती है। बादरायण-ब्रह्मनन्दि-भर्तृप्रपञ्च-शंकराचार्य-मण्डनमिश्र आदि के वाक्यों में इसका प्रमाण प्राप्त होता है। इनमें कुछ उपासना शब्द से, कुछ संराधन, कुछ आराधना-सेवा-भक्ति आदि शब्दों से उपासना को अभिव्यक्त करते हैं। इनमें मात्र यही भेद है कि ब्रह्मनन्दि-भर्तृप्रपञ्च-मण्डनमिश्र आदि ज्ञानभक्ति को समान रूप से साधन स्वीकार करते हैं। श्रीशंकराचार्य, सुरेश्वराचार्य आदि सत्त्वशुद्धि के लिए उपासना को अङ्गीकार करते हैं। इस परम्परा में भक्ति मोक्ष का साधन मानी गई है।[८]

'अपि सुंराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्'[९] शांकरभाष्य की अमलानन्द विरचित कल्पतरू टीका में कहा गया है कि वाचस्पति मिश्र ने भी ब्रह्म साक्षात्कार के लिए 'उपासना' को स्वीकार किया है। मण्डनमिश्र कृत ब्रह्मसिद्धि के प्रथम काण्ड में भी ब्रह्म-साक्षात्कार के साधन रूप अभ्यास को ही 'उपासना' कहा है।[१०] 'प्रसंख्यानं नाम तत्त्वमस्यादिशब्दार्था-न्वयव्यतिरेकयुक्तिविषयकबुद्ध्याऽग्रे नयनमभिधीयते।'[११] 'प्रसंख्यान' शब्द उपासना अर्थ ही गृहीत है तथा उपासना ही भक्ति है।

श्रीरामानन्दाचार्य ने शंकराचार्य द्वारा प्रोक्त उपासना-लक्षण को ही भक्ति का लक्षण कहा

५. डॉ. एम.जॉर्ज निबन्धित- 'उपासना के प्रेरक तत्त्व', शोधपत्रिका- वर्ष-२१, अंक-२, अप्रैल-जून-१९७०
६. अमरकोश- २/७/३४
७. प्राचीन एवं अर्वाचीन वैदिक-साहित्य में भक्ति-तत्त्व, पृ. सं.-१
८. भक्तिरसविमर्श, पृ.सं.-२४
९. ब्रह्मसूत्र, ३/२/२४
१०. ब्र.सि.शं.पा.व्या.पृ. ९६-९७
११. नैष्कर्म्यसिद्धि, ३/९०

है। कुलार्णव तन्त्र में उपास्य के समीप जाकर मन, वचन एवं कर्म से उसकी सर्वतोभाव से सेवा को ही उपासना कहा गया है।[१२] मुण्डकोपनिषद् में- 'धनर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधीयत।'[१३] भी 'उपासा' शब्द उपासना अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। सभी आचार्यों के मत में इसका सामान्य अर्थ है- स्व इष्ट का ध्यान करना। विभिन्न कोश-ग्रन्थों के अनुसार उपासना शब्द के अनेकविध अर्थ प्राप्त हैं। यथा-

'उपासितो यत् पुरुषः पुराणः'[१४]- यहां पूर्णभक्तिरूप अर्थ में, 'उपासते कामलवाय तेषाम्'[१५]- पूजा-भक्तिरूप अर्थ में, 'उपासते योगरथेन धीराः'[१६]- ध्यान अर्थ में, 'राज्यमुपासितव्यम्'[१७]- सेवा अर्थ में उपासना शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार हेमचन्द्र-पुरुषोत्तम-महेश्वर-मेदिनीकार- धरणीधर- आदि कोशकारों के द्वारा 'उपासना' शब्द नानार्थक वर्णित किया गया है।

योगवासिष्ठ[१८] और ब्रह्मसूत्र में शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य आदि भाष्य के अनुसार[१९] ही भगवद्-ध्यान के लिए उपासना शब्द द्रष्टव्य है। श्रीभाष्य के अनुसार ब्रह्मसूत्र में प्रयुक्त 'संराधन' शब्द भी भक्तिरूप उपासना के समान ही है।[२०] योग-दर्शन में भी 'ईश्वर-प्रणिधान' शब्द से भक्ति को ही कहा गया है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'उपासना' शब्द यद्यपि अनेकार्थक है, तथापि भक्तिशास्त्र के अनुसार उपासना भक्त एवं उपासक भक्त में ऐक्य सिद्ध करती है। भगवत्प्राप्ति के चतुर्विध मार्ग- ज्ञान, कर्म, योग एवं भक्ति में से भक्ति अथवा उपासना ही सर्वसुलभ एवं सर्वश्रेष्ठ है।[२१] भागवत-पुराण में भी भक्ति को विश्वकल्याण का मूल द्वार कहा गया है। भक्ति के द्वारा ही भक्त का, भगवान् से तथा उपासक का उपास्य से तादात्म्य सम्बन्ध निर्धारित होता है।

शोधच्छात्रा, म.नं.-A-३३, अमर नगर, खिरनी फाटक के पास, खातीपुरा, जयपुर-३०२०१२ मोबाईल- ०८५०२८७३३७८

---

१२. कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा। समीपसेवा विधिना उपास्तिरिति कथ्यते।। कुलार्णवतन्त्र, १७/६७

१३. मुण्डकोपनिषद्, ३/३

१४. भागवत, १/५/६

१५. वही, ८/५/२९

१६. वही, ३/२१/१४

१७. वही, १०/७३/१४

१८. योग वासिष्ठ, ५/४२/२५

१९. ब्रह्मसूत्र, ३/२/२४, १/२/२९

२०. 'भक्तिरूपापन्नमेवोपासनं संराधनम्', ब्रह्मसूत्रश्रीभाष्य, ३/२/२४

२१. 'ज्ञानतः सुलभा मुक्तिः स्वर्गोर्यज्ञादिपुण्यतः। सेयं साधनसहस्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा।।' नारदपाञ्चरात्र।

संस्थान-समाचार

दान –

डॉ० हरिवंश चंचल शर्मा ५०००/-
चैरिटेवल ट्रस्ट, १९२७,
सैक्टर २२-बी, चण्डीगढ़।

प्रो० (डॉ.) श्रीमती कृष्णा सैनी ५००/-
चेयरपर्सन, वी.वी.बी.आई.एस.
एवं आई.एस. (पं.वि.)
होशियारपुर।

प्रो० (डॉ.) रघवीर सिंह ५०००/-
१३३, न्यू बैंक कालोनी,
होशियारपुर।

श्री राकेश कुमार चड्डा ५०१/-
मै० आर.के.सिल्क स्टोर,
कशमीरी बाजार, होशियारपुर।

श्रीमती स्नेहलता जैन २१००/-
भाग्यतारा, गढ़ी गेट,
होशियारपुर।

श्री तरसेम लाल ५००/-
फतेहगढ़, होशियारपुर।

श्री जितेन्द्र कौशिक २५१/-
शोधछात्र(पी.एच.डी.)
वी.वी.बी.आई.एस.एवं आई.एस.
होशियारपुर।

श्री संजीव सूद ११०००/-
मै० नेशनल रोजन एवं
तारपीन फैक्टरी, फतेहगढ़ रोड़,
होशियारपुर।

प्रो० श्रवण कुमार रिहानी ५०००/-
म.न. १६१७, सैक्टर ४४-बी,
चण्डीगढ़।

डॉ० ए.के. दत्ता २०००/-
८५, दयानन्द विहार, दिल्ली।

मै० बैजनाथ भण्ड़ारी ३०,०००/-
पब्लिक चैरिटेवल ट्रस्ट,
डिफैंस कालोनी,
नई दिल्ली।

कु० हरविन्द्र कौर ७२०/-
कम्पयूटर अध्यापिका
वी.वी.आर.आई,
साधु आश्रम, होशियारपुर।

हवन-यज्ञ–

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। अक्टूबर 2016 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

वधाई

दिनांक २६-१०-१६ को आयुष्मती गिरिजा (सुपुत्री श्रीमती ममता सूरी एवं श्री राकेश सूरी) एवं आयुष्मान् मोहित के जालन्धर में संपन्न शुभ विवाह पर श्रीमती ममता सूरी तथा श्री राकेश सूरी जी को संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत बधाई। नव-विवाहित युगल सर्वथा सुखी, प्रसन्न और स्वस्थ रहे, यही सबकी शुभकामना है।

प्रो. प्रवीण सिंह राणा की सुपुत्री आयुष्मती मानसी का शुभ विवाह आयुष्मान् रोहित के साथ हमीरपुर (हिमाचल) में १०-१०-१६ को संपन्न हुआ। इस मंगल कार्य पर संस्थान के कर्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत वधाई ।विवाहित युगल स्वस्थ व सानन्द रहे, यही सबकी शुभकामना है।

पंजाब यूनिवर्सिटी पटल की चेअरमैन, प्रो. कृष्णा सैनी जी के सुपुत्र आयुष्मान् विक्रान्त तथा आयुष्मती सोनाक्षी के १०-१०-२०१६ को होशियारपुर में संपन्न शुभ विवाह पर संस्थान कमिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत वधाई तथा उनके सुखी जीवन की शुभकामना।

संस्थानीय कंटीन के ठेकेदार श्री मोहनलाल की सुपुत्री आयुष्मती मधुबाला तथा आयुष्मान् मनोज चौधरी के १९-१०-१६ को गांव कांगड़ (हिमाचल) में संपन्न शुभ विवाह पर संस्थान के कर्मिष्ठों की ओर से हार्दिक वधाई। वर-वधू स्वस्थ व सानन्द रहें, यही सबकी शुभकामना है।

पद्मभूषण स्व. (डा.) विश्वबन्धु जयन्ती-समारोह

दिनांक ३०-९-२०१६ को संस्थान में स्व. आचार्य विश्वबन्धु जी की जयन्ती के समारोह का अयोजन किया गया। प्रातः ९:०० बजे संस्थान के सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ किया गया, जिसमें डॉ. देवराजशर्मा, आचार्य भद्रसेन, श्रीमती स्नेहलता जैन, सुश्री डॉ. रेनू कपिला तथा वी.वी.आर.आई. एवं पंजाब विश्वविद्यालय पटल के सभी प्राध्यापकों अन्य कर्मिष्ठों तथा छात्रों ने भाग लिया। हवन-यज्ञ में श्री माननीय किशोरकान्त जी तथा श्री संजीव सूद जी यजमान के रूप में विद्यमान थे।

समारोह के अवसर पर प्रातः ९:०० बजे माननीय किशोरकान्त जी (केन्द्रीय अभिलेखागार, राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ, नई दिल्ली) का संस्थान में पधारने पर संस्थान के सचिव एडवोकेट श्री बलदेव सहाय ओहरी, संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल, संस्थान की कार्यकारिणी की सदस्या

डा. रेणू कपिला, दोनों संस्थानों के कर्मिष्टवर्ग तथा प्रि. उमेश शर्मा इत्यादि गणमान्य व्यक्तियों ने माल्यार्पण कर स्वागत किया। तत्पश्चात् प्रातः ११:०० बजे श्री विजय कुमार सांपला जी (केन्द्रीय राज्यमंत्री, सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार एवं प्रदेश अध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी, पंजाब) का वी.वी.आर.आई. कार्यकारिणी के सचिव, एडवोकेट श्री बलदेव सहाय ओहरी, संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल, वी.वी.आर.आई. की कार्यकारिणी की सदस्या प्रो. रेणू कपिला एवं प्रिंसिपल उमेश, प्रो. धनराज, प्रो. रघवीर सिंह, प्रो. प्रेमलाल शर्मा, प्रो. कृष्णा सैनी, प्रो. प्रभात सिंह, डॉ. देवराज शर्मा, डॉ. ऋतु बाला, डॉ. शिव कुमार वर्मा, श्री शंकरदास, श्री श्रीकान्त, श्री राकेश कुमार, श्रीमती रितु शारदा, सुश्री हरविन्दर कौर, श्रीमती स्नेहलता जैन, श्री उमेश जैन, श्री कमलपुरी, तहसीलदार होशियारपुर, श्री मोहनलाल पहलवान, श्री अजयमोहन बब्बी, श्री सर्वजीत (म्युजियम विभाग), सरदार अवतार सिंह, श्री अनूप कुठियाला, श्री विमल कुठियाला तथा नगर के गणमान्य व्यक्तियों ने फूल-मालाओं से हार्दिक स्वागत किया।

सभा के प्रारम्भ होने पर प्रथम संस्थान के छात्रों द्वारा वेद-मन्त्रोच्चारण किया गया। अनन्तर संस्थान संचालक ने अध्यक्ष जी का परिचय दिया तथा भूतपूर्व चेयरमैन वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड आई.एस. डा. प्रेमलाल शर्मा द्वारा मुख्य-अतिथि का परिचय दिया गया। संस्थान संचालक

द्वारा संस्थान का परिचय देने के साथ-साथ संस्थान को चलाने में आ रही अनेक कठिनाईयों को मंत्री जी के संमुख रखा। उसके बाद वी.वी.आर. आई की कार्यकारिणी के सदस्य एवं मैडिकल तथा पैरामैडिकल डी.ए.वी. इन्स्टीच्यूटस् जालन्धर के संचालक प्रिं. एम.एल. ऐरी ने संस्थान में वेदों और वैदिक साहित्य पर किये जा रहे कार्य की सराहना करते हुए संस्थान की कमजोर आर्थिक स्थिति को भी स्पष्ट किया। तत्पश्चात् मुख्य- अतिथि माननीय सांपला जी ने अपने संबोधन में कहा कि संस्थान की जो भी कठिनाईयां है, उन्हें लिख कर मुझे भेज दिया जाय तो मैं यथाशक्ति उन्हें हल करने का यत्न करूंगा। तत्पश्चात् श्री रविदास आयुर्वेद यूनिवर्सिटी के कुलपति पद्मश्री प्रो. ओ.पी. उपाध्याय जी ने स्व० आचार्य (डॉ०) विश्वबन्धु जी द्वारा किये महान् कार्य की प्रशंसा करते हुए उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। इसके अतिरिक्त प्रिं. उमेश शर्मा, प्रो० धनराज शर्मा चण्डीगढ़ आदि अन्य विद्वानों ने भी श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। अन्त में श्री किशोरकान्त जी ने अध्यक्षीय भाषण में भारतीय संस्कृति पर अपने विचार प्रकट करते हुए संस्थान में हुए वैदिक पदानुक्रमकोष आदि महान् कार्यों की प्रशंसा करने के साथ-साथ आचार्य विश्वबन्धु जी द्वारा लिखी गई पुस्तक **मानवता का मान** के विशेष उल्लेख किया। अन्त में संस्थान के संचालक द्वारा सभी उपस्थित जनों को धन्यवाद के उपरान्त प्रो० डॉ० प्रेमलाल जी ने शान्तिपाठ किया।

विविध-समाचार

५२वीं आंतरिक हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन

भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून के राजभाषा अनुभाग द्वारा आयोजित '५२वीं आंतरिक हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठी' का आयोजन संस्थान के सी वी रमन व्याख्यान-कक्ष में किया गया।

संगोष्ठी का उदघाटन करते हुए संस्थान के डॉ एस एम नानोटी, मुख्य वैज्ञानिक ने कहा कि वैज्ञानिक संगोष्ठियों की यह श्रृंखला वैज्ञानिकों को हिन्दी में अपनी बात रखने के लिए एक बहुत बड़ा मंच है। हमें इस मंच का लाभ उठाते हुए अधिक से अधिक वैज्ञानिक विषय पर हिन्दी में लिखना चाहिए। उन्होंने वैज्ञानिकों का आह्वान किया कि वे राजभाषा अनुभाग द्वारा प्रकाशित चर्चित हिंदी पत्रिका 'विकल्प' के महत्वपूर्ण विशेषांकों को पढ़ें।

संगोष्ठी का संचालन करते हुए संयोजक एवं राजभाषा अनुभाग के प्रभारी डॉ. दिनेश चंद्र चमोला ने कहा कि जब हम ज्ञान-विज्ञान की किसी बात को हिन्दी में अभिव्यक्त करने का प्रयास करते हैं तो वह हर श्रोता व पाठक के दिल को स्पर्श करती है, चूंकि हिंदी हृदय की भाषा है; संस्कारों की भाषा है।

इसके उपरांत क्रमशः 'फेनोलिक एस्टर आधारित नए ऑक्सीकरण रोधी योजकों का संश्लेषण तथा स्नेहक आधार द्रव्य और बायोडीजल में उसके प्रदर्शन का मूल्यांकन' विषय के अंतर्गत डॉ राजकुमार सिंह; 'अपशिष्ट का सदुपयोग-अपशिष्ट प्लास्टिक से मूल्यावांन पदार्थ तक', विषय पर डॉ सनत कुमार; 'मृत्तिका व्युत्पन्न सोपानिक मध्यरंध्री ZSM-5 पर नवीकरणीय तेलों का हाइड्रोजन उपचार' 'विषय पर जितेंद्र कुमार; 'वाहन-अनुरक्षण एवं प्रचालन द्वारा प्रदूषण एवं ईधन में कमी'; विषय पर हाकिम सिंह; 'सौर ऊर्जा द्वारा चालित वातानुकूलित यूनिट'; विषय पर गोर्धन जैन; 'नेफ्था से उच्चतर परास हाइड्रोकार्बन ईधन स्टॉक के उत्पादन हेतु एक चरणी उत्प्रेरकीय प्रक्रम'; विषय पर राजीव पंवार ने अपनी प्रभावी प्रस्तुतियां दीं।

डॉ० दिनेश चंद्र चमोला
प्रभारी राजभाषा अनुभाग
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून-२४८००५

नास्ति माता समा छाया नास्ति माता समा गतिः।
नास्ति माता समं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रिया ।।

महाभा. शान्तिपर्व २६६, ३१

माता के समान कोई दूसरा संरक्षक नहीं अर्थात् माता के संरक्षण में प्राणी को जो सुख प्राप्त होता है, वह अन्यत्र नहीं मिलता। माता से बड़ा दूसरा सहारा नहीं हो सकता। माता के समान अन्य कोई प्राणी की रक्षा नहीं कर सकता। वस्तुतः माता के समान इस संसार में कोई दूसरा नहीं है।

❋

मातृत्व नारी-जीवन की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या और सबसे बड़ा त्याग है। इसी साधना, तपस्या और त्याग की प्रतिमूर्ति

पूजनीया धात्रेयी बुआ

स्वर्गीया सुमित्रा देवी

की पुण्यस्मृति में समर्पित

प्रयोजकः

प्रिंसिपल उमेशचन्द्र शर्मा, पी.ई.एस. (I) रिटायर्ड,

शिवशक्ति नगर, ऊना रोड, होश्यारपुर।

"The Secret of true life may be summed up in these simple words — "Repeat the name of God and give sympathy & and love to all creation."

"He liveth well who thinketh well, thinketh noble thoughts, beautiful thoughts, thoughts which are true, and good and radiant."

"Do you love others? Back to you will come the angels of love printing beauty your face and your actions"

Noble Thoughts of A Famous Freedom Fighter/Patriot

Pt. Durga Dass Ji Sharma

(1901–1988)

well known as 'Doaba Gandhi'

(in his own handwriting)

विनीत बच्चे

Principal Parmanand Sharma, Dharamsala (son-in-law)
Prof. S. K. Sharma, Mumbai (son),
Dr. S. K. Airee, Martin, U.S.A. (son)
Brij Mohan Sharma (S/o Late Sh. Raj Kumar Airee), New Delhi (grandson)
Virender Kumar Sharma (son)
"Mangal-Bhawan",
New Civil Lines, Hoshiarpur

कुलीनैः सह सम्पर्कः पण्डितैः सह मित्रताम्।
ज्ञातिभिश्च समं मेलं कुर्वाणो न विनश्यति।।

चाणक्यनीति-२९२

जीवन में अच्छे व्यक्तियों के साथ मेल-जोल रखने वाला तथा विद्वान् व्यक्तियों के साथ मित्रता रखने वाला एवं अपने सम्बन्धियों के साथ सम्बन्ध बनाये रखने वाला व्यक्ति नष्ट नहीं होता अर्थात् अवनति को प्राप्त नहीं होता।

❋

अपने पूज्य पति

स्व. एयर मार्शल अजीत नाथ जी

(जिनकी १००वीं जन्मतिथि २५. ४. २०१६ को मनाई गई)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजिका :

श्रीमती गुरशान्ति नाथ

राजदूत मार्ग, नई दिल्ली

नाहारं चिन्तयेत् प्राज्ञः धर्ममेव हि चिन्तयेत्।
आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते।।

चाणक्यनीति ६०१

विद्वान् को चाहिए कि वह जीवन में भोजन के विषय में न सोचकर केवल धर्म विषयक कार्य का चिन्तन करे। धर्ममय कार्य करे अर्थात् धर्मार्जन करता रहे। भोजन तो मनुष्य के साथ ही उसके लिए पैदा हो जाता है अर्थात् परमात्मा जिसको पैदा करता है उसके भोजन की व्यवस्था पहले ही कर देता है। संसार में कोई भी ऐसा प्राणी नहीं जिसके लिए परमात्मा ने भोजन की व्यवस्था न की हो।

IN EVERLASTING MEMORY OF

LATE SH. PUSHAP KUMAR JAIN

(expired on 19th Nov. 1980)

ON HIS 36TH DEATH ANNIVERSARY

DEEPLY REMEMBERED BY :

RAVI KUMAR JAIN (Son)
NEENA JAIN (Daughter in Law)
VARUN JAIN (Grand Son)
SHEENA JAIN (Grand Daughter in Law)
AMIT JAIN (Grand Son in Law)
PRERNA JAIN (Grand Daughter)
Great Grand Children
ANANYA, VIBHAV, NAVYA & RIDIT

PHARMA CRAFTS (INDIA) "Pushapkamal" Building
P. W. D. Rest House Road, Gagret – 177201, Distt. Una (H. P.)

SURGINEEDS
N. A. C. Building, Gagret–177201, Distt. Una (H. P.)

SHREYANS INDIA
"Pragati Bhawan", Near S. D. City Public School, Chintpurni Road, Hoshiarpur- 146001 (Pb.) Cell No.: 85588–66155, 98886–91475

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो.आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-१०-२०१६ को प्रकाशित।